भूमिका

कुछ लोगों ने मेरी पुस्तकें पढ़ी हैं। जिनको इस प्रकार समय नष्ट करने का अवसर नहीं मिला उनमें से भी कुछ ने सुन रखा है कि मैं कभी-कभी लिखता हूँ। प्रसिद्धि यह है कि मेरी लेखनी राजनीति और दर्शन जैसे गम्भीर विषयों पर ही उठती है। अब मैं कहानी लिखने बैठा हूँ, इससे बहुतों को आश्चर्य होगा।

इस कहानी का छोटा-सा इतिहास है। उस इतिहास में ही कारण यह भूमिका लिखी जा रही है, अन्यथा ऐसी पुस्तकों में भूमिका के लिए स्थान नहीं होता। मैं कई मित्रों से यह कहता रहा हूँ कि हिन्दी में 'सायंस फिक्शन' (वैज्ञानिक कहानी) लिखने का अभी चलन नहीं है और यह बहुत बड़ी कमी है। 'सायंस फिक्शन' भी दो प्रकार का होता है। साधारण कथानक रखकर उसमें कहीं बिजली का जिक्र कर दिया जाय या घटनास्थल पृथिवी से उठाकर किसी अन्य पिण्ड पर डाल दिया जाय तो यह वास्तविक वैज्ञानिक कहानी नहीं हुई। इस विषय के जो अच्छे लेखक हैं उनका उद्देश्य विज्ञान का प्रचार होता है। कहानी तो बहाना मात्र होती है। इसलिए कथानक बहुत थोड़ा होता है। लेखक कल्पना से काम तो लेता है परन्तु वैध सीमाओं के भीतर। उन्हीं बातों की चर्चा करता है जो या तो आज विज्ञान के प्रयोग में आ चुकी हैं या विज्ञान की प्रगति को देखते हुए सौ-दो-सौ वर्षों में व्यवहार में आ जायेंगी। जिसको विज्ञान सम्भव मानने लगा है उसका ही उल्लेख किया जाता है। ऐसे वाङ्मय की रचना के मार्ग में कई गहन कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। विज्ञान की गूढ़ बातों को किस्सा-कहानी के ढंग पर कहना सुकर नहीं होता और यदि

उनकी विशद व्याख्या की जाय तो वह विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का रूप ले लेता है। इससे उद्देश्य की ही हानि होती है। हिन्दी में लिखनेवाले को एक और विपत्ति का सामना करना होगा। पाश्चात्य देशों में साधारण जनता का सामान्य ज्ञान बढा हुआ है, हमारे यहाँ अच्छे पढे-लिखे व्यक्ति भी विज्ञान के प्रारंभिक ज्ञान तक से बहुधा वचित रहते है। यहाँ लेखक को अपने पाठक को ऐसी बातें समझानी पडेंगी जिनको पश्चिम में प्राय सब जानते है।

सम्भवत इसी कारण अब तक ऐसी पुस्तकें नही लिखी गईं। मैंने जिन लोगो से चर्चा किया उन्होनें मेरे विचार का तो अभिनन्दन किया पर अग्रसर कोई न हुआ। तब मैंने स्वय इस काम को करने का निश्चय किया। अपनी कमियो को जानता हूँ, विज्ञान का पडित नही, कहानी लिखने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ। पुस्तक भ्रामक भी हो सकती है और रोचक तो स्यात् नही ही होगी। इसकी असफलता के साथ साहित्यिक जगत् में मेरी जो कुछ थोडी-बहुत साख है वह भी मिट जायगी। यह सब समझता हूँ पर आशा यह है कि मेरी त्रुटियो से लाभ उठाकर दूसरे लोग जो इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है, इस दिशा में प्रवृत्त होगे। इससे हिन्दी वाङ्मय की एक त्रुटि दूर होगी और जनता का सुबोध और रोचक भाषा में विज्ञान के गम्भीर तत्वो से परिचय होगा। यदि इतना हुआ तो स्वय असफल होकर भी यह छोटी-सी पुस्तक कृतकृत्य हो जायगी।

मैंने दूरस्थ पिण्डो में प्राचीन भारतीय सस्कृति की झलक दिखायी है। मेरा ऐसा करना उतना ही वैध है जितना अग्रेजो या अमरिकन लेखकों का ऐसे पिण्डों को अग्रेजी बोलनेवालों से बसाना। इससे मुख्य वैज्ञानिक तथ्यो को कोई आघात नही पहुँचता और रोचकता कुछ बढ़ जाती है। वस्तुत सौरमडल के बाहर किस किस तारे के साथ ग्रह है यह कोई नही

जानता। बड़े-से-बड़े दूरबीन से भी ऐसे छोटे पिंड देख नहीं पड़ते परन्तु हाँ, ऐसा अनुमान है कि जैसे हमारे सूर्य्य के साथ ग्रहोपग्रह परिवार है वैसे सब नहीं तो कुछ दूसरे तारों के साथ तो होगा ही।

मैंने इस भूमिका के आरम्भ में कल्पना से काम लेने की वैध सीमा की ओर संकेत किया है। कहानी का स्वरूप होने से कुछ ऐसी बातें कहनी पड़ती हैं जो इस सीमा के बाहर चली जाती हैं, पर यह अनिवार्य्य है। इस पुस्तक में जिस यात्रा का वर्णन किया गया है उसकी समाप्ति सात वर्षों में हुई है। करोड़ों कोस की यात्रा थी। विज्ञान के अनुसार प्रकाश का वेग वेग की चरम सीमा है। अर्थात् कोई वस्तु ९३,००० कोस प्रति सेकेंड से अधिक तेज नहीं चल सकती। जहाज का वेग किसी भी दशा में इससे अधिक नहीं हो सकता। जिस दूरी को पार करने में प्रकाश का लाखों वर्ष लगते हैं, वह सात वर्ष में कैसे हुई? यदि इस सम्बन्ध में शुद्ध गणित का लिहाज किया जाय तो यात्रा कभी समाप्त ही न हो। शनि के उपग्रह टाइटन पर होटल और पुलिस की अन्तर्ग्रह चौकी रक्खी गई है। यदि कभी आकाशयान चले और दूसरे ग्रहों पर आकाशयान चलानेवाले व्यक्तियों का अस्तित्व प्रमाणित हुआ तो कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं, इस प्रकार का प्रबंध करना ही होगा। हाँ, टाइटन की बात कल्पनामात्र है, ज्योतिषियों का तो यह ख्याल है कि शनि इस योग्य नहीं है कि वहाँ कोई बस सके। और टाइटन के भी बसने योग्य होने का कोई प्रमाण नहीं है। लेखक एक और विषय में स्वतन्त्रता से काम लेता है। यदि उसको ऐसा लगता है कि किसी विशेष दिशा में विज्ञान की प्रगति आगे चलकर मानव समाज के लिए हानिकर हो सकती है तो फिर लोगों को सावधान करना उसका धर्म हो जाता है। इस धर्म पालन करने में उसे अतिशयोक्ति से काम लेना ही पड़ता है। वह ऐसा चित्र खींचता है जो असम्भव न होते हुए

भी निकट भविष्य के लिए सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में यन्त्रो में चेतना का सचार इसका उदाहरण है।

वेष्टन पर जो आकाशचित्र बना हुआ है, वह कल्पित यात्रा के मार्ग को बतलाता है। हम लोग अपने निर्मल आकाश की ओर सिर उठाकर देखना भूल गये है। यात्रा हुई हो या न हुई हो परन्तु यदि इसी बहाने कुछ लोगो मे आकाश निरीक्षण का प्रेम जाग उठे तो मैं अपने को धन्य मानूँगा। मुझे तारो से प्रेम है और यह कह सकता हूँ कि उनसे अपनापन स्थापित कर लेने में बड़ा आनन्द मिलता है।

लखनऊ
आषाढ शुक्ल १, २०१०

सम्पूर्णानन्द

चार मित्र

आज से पचहत्तर वर्ष बाद—म० २०८५ विक्रमी, सन् २०२८, आश्विन का महीना, शुक्ल पक्ष। स्थान: काशी-सारनाथवाली सड़क पर एक बाग।

रात में १०॥ बजे होंगे। एक अच्छे सजे कमरे में चार मित्र बैठे हैं। बीच में मेज पर कुछ पुस्तकें और कई नक्शे रखे हैं। चारो मित्र समवयस्क थे, चारो की मुद्रा में गम्भीरता थी। उनका परिचय शुरू में ही दे देना अच्छा होगा। अद्वैतकुमार काशी विश्वविद्यालय से ज्योतिष और गणित शास्त्र के, और रमेशचन्द्र प्राणिशास्त्र के डाक्टर थे। विमलादत्त ने रुड़की से इंजिनियर की उपाधि ली थी। उनको मशीनो के साथ-साथ विद्युत्-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। यह तीन तो विज्ञान की किसी न किसी शाखा के अच्छे ज्ञाता थे। इनके चौथे मित्र का अध्ययन-क्षेत्र इनसे भिन्न था। वह काशी विद्यापीठ के शास्त्री थे और उनका क्षेत्र दर्शन और समाजशास्त्र था। संस्कृत से अच्छी रुचि थी। इसी लिए मित्रमंडली मे पंडितजी कहलाते थे। नाम गिरीशप्रसाद था।

अद्वैत—हमारा जहाज तो तैयार हो गया, सामान भी प्राय सब रख लिया गया पर ज्यो-ज्यो उड़ने के दिन निकट आ रहे है, जी में न जाने कैसा हो रहा है।

विमला—क्यो, क्या तुमको इसकी बनावट में कुछ सन्देह होता है? अभिमान है तो बुरी चीज परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि कोई भी

जहाज आकाश में उड सकता है तो हमारे 'महत्वान्' में भी वह क्षमता है। मैंने अमेरिका के बने आकाशयान देखे है। उनका भीतर-बाहर से अध्ययन किया है। मेरा विश्वास है—क्या कहूँ अपनी प्रशंसा होती है—कि इसमें उनके सब गुण है और अनुभव से उनमें जो त्रुटियाँ देखी गई है वह भी दूर कर दी गई है।

रमेश—यह बात नही है विमला। इस जहाज पर हम सब को गर्व है, परन्तु पृथ्वी, पृथ्वी ही नहीं सौरमडल, को छोडकर शून्य में भ्रमण करना साधारण बात नही है। अब तक जितने आकाशयान बने है वह सौरमडल के आगे नही गए। न जाने हम किस केतु या मृत सूर्य्य से टकरा जायें, किस बृहत् पिंड के आकर्षण-क्षेत्र में पकड जायें। यदि हमारी भोज्य सामग्री समाप्त हो गई और हमारा ईंधन का भडार खतम हो गया और इसी बीच हम किसी ऐसे स्थान पर न पहुँच सके जहाँ मनुष्य रह सकता हो तो क्या होगा?

पडित—होगा क्या? जो लोग किसी पथ पर पहिले चलते है उनको सफलता की आशा रखते हुए भी असफलता के लिए तैयार रहना चाहिए। प्राण ही तो जायेंगे, पर यह तो एक दिन यो भी होना है: क्षण प्रज्वलित श्रेयो, न च धूमायित चिरम्। यह तो सोचो हम उस मार्ग पर चलेंगे जिसका आज से लाखो वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजो ने प्रशस्त किया था।

रमेश—इसका क्या तात्पर्य?

पडित—हम लोगो ने यही तो निश्चय किया है कि सप्तर्षिमडल के तारो की ओर चलेंगे। हमारे शास्त्रों के अनुसार उन सब लोकों में ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षियों की सन्तान बसी हुई है। तो फिर कभी तो वह भारत से वहाँ गये होंगे?

विमला—सप्तर्षिमंडल यहाँ से कम-से-कम ८ करोड ज्योतिर्वर्ष* अर्थात् २४६०८ $\times 10^{11}$ कोस दूर है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि प्राचीन काल में लोग इतनी दूर चलनेवाले आकाशयान बना सकते थे? पर हाँ, आप तो यह मानते होंगे कि आजकल की सारी विद्या आपकी पुरानी पोथियों में भरी पडी है।

पंडित—मैं यह सब कुछ नहीं जानता और फिर इस शास्त्रार्थ से लाभ ही क्या? यदि हम वहाँ पहुँच गये तो सच झूठ की परख आप ही हो जायगी।

अद्वैत—हमने निकलने की तिथि तो अभी चुनी है। विजयादशमी को लोग सीमोल्लंघन किया करते हैं। हम बहुत बडी सीमा को पार करने का अनुष्ठान करेंगे।

पंडित—भारत का राष्ट्रध्वज और एक बन्द शीशी म गंगाजल न भूल जाना। यदि आकाश में ही मृत्यु होनी हो तो

रमेश—(बात काटकर) अच्छा, खैर। तुम्हारे दाह-संस्कार के लिए हम थोडी-सी चन्दन की लकडी भी रख लेंगे। परन्तु अब बात करने का समय नहीं है। अगले तीन दिन बड महत्व के हैं। जहाज का सारा बचा-खुचा काम पूरा करना है।

इस बातचीत की व्याख्या की अपेक्षा नहीं है। इन चारों ने अपने पैसे से इस आकाशयान को तैयार किया था। सारनाथ में पंडित का बाग था। वहीं सारा काम सम्पन्न हुआ था। भारत सरकार न इन लोगों को यह यात्रा करने की अनुमति द दी थी।

आकाश की सैर करने का शौक मनुष्य को सदा से रहा है। इस सैर

*प्रकाश एक सेकंड में ९३,००० कोस जाता है। इस हिसाब से वह एक वर्ष में जितनी दूर जाता है, उसे ज्योतिर्वर्ष कहते हैं।

से दूर के पिण्डो पर पहुँचने से कोई प्रत्यक्ष लाभ होगा, ऐसा समझकर तो लोग इस ओर प्रवृत्त हुए नही थे। यह तो एक धुन थी, चित्त में एक उमग थी, कि नया काम करो, जो अब तक किसी ने न किया हो वह कर दिखाओ। इसी नशे में लोगो ने हजारों कोस के मरुस्थल छान डाले, समुद्रो को गोप्पद बना डाला, गगनचुम्बी पहाडो की चोटियों से चरणस्पर्श कराया। यदि स्वार्थ और समझदारी को मनुष्य कभी-कभी छोड न देता तो वह आज भी जगल में कडे ही बीनता रहता।

पहिले तो हवा में उडना ही विकृत मस्तिष्क का स्वप्न जैसा लगता था। राइट बन्धुओ ने गुब्बारा उडाया। हवाई जहाज बने, धीरे-धीरे घर-घर फैल से गये। सफलता ने उत्साह बढाया, महात्वाकाक्षा बढी। वायु-मडल के ऊपर जाने का विचार उठा। सबसे पहिले हरमन आबर्थ ने १९२३ मे इस बात की सम्भावना की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यह ख्याल उठा कि जिस प्रकार आतिशबाजी में बान (राकेट) बडी तेजी से ऊपर उठता है वैसे ही कोई चीज फेंकी जाय। मूल में इतना जोर होना चाहिए कि वह एक ही उछाल में पृथिवी के आकर्पण-क्षेत्र के बाहर चली जाय, नही तो नीचे गिर जायगी। परन्तु ऐसी शक्ति कहाँ से आये जो किसी वस्तु को एक साथ कई हजार कोस ऊपर फेंक दे? महायुद्ध ने इस प्रश्न का उत्तर दे दिया। हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरा, जापान ने घुटने टेक दिये, पृथिवी पर बडे-बडे राजनीतिक परिवर्तन हुए, मनुष्य को सामूहिक सहार का नया साधन मिला परन्तु यह भी विदित हो गया कि परमाणु शक्ति ही आकाश-यात्रा के लिए उपयुक्त ईधन है। युद्ध के बाद फिर लगन के साथ प्रयोग आरम्भ हुए। इस काम में प्रत्यक्ष रूप से सरकारी सहायता तो बहुत कम प्राप्त हुई, प्राय धनियो और विज्ञान-प्रेमियो ने निजी रुपया लगाकर विज्ञान के पडितों को ऐसे प्रयोग चलाने

का अवसर दिया। कुछ लोगों ने स्वयं ऐसे प्रयत्न किये। मनुष्य के प्राणों को जोखिम में डालना तो था नहीं। यह विचार था कि राकेट में फोटो और बिजली के ऐसे यत्र रक्खे जायें जो ऊपर से ही चित्र ले सकें। यह बहुत कठिन न था पर राकेट का बनाना कठिन था। यदि शक्ति में कुछ कमी हो तो वह पृथिवी के आकर्षण के प्रभाव से लौट आता, यदि कुछ अधिक हो जाय तो वह चन्द्रमा के आकर्षण के भीतर आकर उस पर जा गिरता।

गणना से यह बात सिद्ध थी कि यदि कोई वस्तु प्रति सेकड साढे तीन कोस (७ मील) के वेग से ऊपर जाय तो वह अपने से लौट कर न आयेगी। राकेट को उछालने के लिए ऐसी शक्ति चाहिए थी। लौटाने के लिए पृथिवी पर से ही राडार के द्वारा नियत्रण करना था। भगवान् भगवान् करके १९७० में पहिला राकेट ऊपर गया। इसका निर्माण रूस में हुआ। इसके बाद कई और बने। धीरे-धीरे लोगों का साहस बढा और ऐसे आकाशयानों को बनाने का विचार उठा जिनका नियत्रण पृथिवी से न हो वरन् भीतर बैठे हुए चालक करें। बीस वर्ष बाद १९९० में पहिला आकाशयान चन्द्र-मडल में पहुँचा। इसके चालक अग्रेज थे। सन् २००० तक चन्द्रमा पर इन्दुपुर नगर बस गया। हवा पानी का कृत्रिम प्रबध करना पडता है, यो जगह रमणीक है, स्वास्थ्यकर है। वहाँ पैदा हुए बच्चो को देखकर ऐसा लगता है कि सौ-दो-सौ वर्षों में एक नये प्रकार की मनुष्य-जाति बन जायगी। शुरू में जो यान बने उनके लिए बीच-बीच में राकेटो पर ईंधन रहता था। लाख दो लाख कोस चलकर वह राकेट से उसी प्रकार ईंधन लेते थे जैसे मोटर १५०-२०० मील चलकर लेती है। पीछे से जहाज इस विषय में स्वतत्र हो गये।

इधर मनुष्य नये ग्रहो पर बसने की बात सोच रहा था, उधर यह

प्रतीत हुआ कि कुछ दूसरे ग्रहों पर भी ऐसे बुद्धिमान् प्राणी है जो आकाश-यान बना सकते है। सम्पर्क हुए, सन्धियाँ हुईं। व्यापार होने लगा। सौर-मडल के भीतर आकाश-यात्रा वैसी ही प्रचलित हो गयी जैसी कि पृथिवी से ऊपर हवाई जहाज की यात्रा।

स्वभावत हौसले बढते गये। अब तो यह होड पडी थी कि सौरमडल के बाहर की सैर में सबसे पहिले पृथिवी का जहाज जाता है या किसी अन्य ग्रह का।

आज यह सुसमाचार न केवल पृथिवी वरन् समस्त सौरमडल में दौड गया कि इस प्रकार का पहिला प्रयास पृथिवीवासी करने जा रहे हैं।

जिस सारनाथ में यह प्रयोग होने जा रहा था वह सौ वर्ष पहिले का सारनाथ न था। सडक पर इनका बाग था पर बाग के पीछे लगभग ढाई कोस का मैदान था। यह जमीन सरकार ने दिलवायी थी। यही चार वर्ष के परिश्रम में जहाज तैयार हुआ था। कारखाना था, कई एजिन थे, रेल की पटरियाँ बिछी हुई थी। जो व्यक्ति इस विषय का अच्छा जान-कार न हो वह धातु के इस जगल से घबरा उठे। सारा निर्माण-कार्य विमलादत्त की देख-रेख में हुआ था परन्तु उसमें बीसो इजिनियर और सैकडो कारीगर लगे थे।

अगले तीन दिन बडे परिश्रम के थे। ताजा भोजन तो कही मिल नही सकता था। टिनों में फलो, शाको, मासो और अन्नों के सार और सत्त भरे गये थे। तात्कालिक उपचार के लिए औषध के बक्स थे। समय काटने को कुछ पुस्तकें थी, कुछ खेल का सामान था। शस्त्र के स्थान मे दो तोपें थी जो गोलो के बदले बिजली की प्रचड किरणें छोडती थी। यह किरणें १५-२० हजार कोस की दूरी पर २-३ फुट मोटी लोह की चादर को गला सकती थी। इसके सिवाय प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसा खड्ग था

जिसके स्पर्श से शत्रु बेहोश हो सकता था। उसमें एक बटन था जिसको दबाने से बिजली की किरण निकलकर मनुष्य को एक क्षण में राख का ढेर कर सकती थी।

आकाशयान का चलाना बड़ा कठिन काम है। बड़ी कड़ी ट्रेनिंग होती है। मुख्य चालक तो विमलादत्त थे परन्तु चालक का सर्टीफिकेट सब के पास था। आवश्यकता पड़ने पर इनमें से कोई भी जहाज को सँभाल लेता। पृथक् चालक ले लेना अच्छा होता, कई लोग तैयार थे, पर नया जहाज था और छोटा। बिना अनिवार्य हुए व्यक्ति बढ़ाना ठीक न था। इसी लिए कोई डाक्टर साथ नहीं लिया गया। रमेशचन्द्र को आवश्यक ट्रेनिंग देकर डाक्टर मान लिया गया। जहाज के अस्पताल पर औषधोपचार के सिवाय चीरफाड का भी प्रबंध था।

रमेशचन्द्र ने इस विभाग के काम को निबाह लेने का पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था

यो तो इस पर बहुत से यत्र थे पर उनमें से एक का थोड़ा सा वर्णन करना आवश्यक है। उसे "दृष्टिध्वनि" कहते थे। उसका आधारभूत सिद्धान्त सरल है पर अभी वैज्ञानिक उसे बनाने में सफल नहीं हुए हैं। मान लीजिए, मेरे चित्त में गऊ का विचार आया। युगपत् गऊ का चित्र सामने आ जायगा और एक गऊ शब्द मुँह से निकल जायगा। पर जो व्यक्ति मेरी भाषा नहीं समझ सकता उसके लिए यह शब्द बेकार है। वह मेरे विचार को नहीं समझ सकता। किन्तु इस यत्र की विशेषता यह थी कि किसी विचार के मन में उठते ही उसकी मूठ पर हाथ रखने से एक पर्दे पर अनुरूप चित्र बन जाता था और अनुकूल शब्द निकलने लगते थे।

बहुत लोगों की सम्मति थी कि विदाई बड़े धूमधाम से हो, पर यह लोग इसके विरुद्ध थे। इनका आग्रह था कि यदि हम सचमुच कुछ काम

घर सके और खैरियत से लौट आये तो खुशी मनाने के लिए बहुत अवसर मिलेंगे। अभी तो प्रयास है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने की प्रसन्नता होती है, बैठना तो साधारण बात है।

यों तो यह प्रयास भी साधारण न था परन्तु सबने ही इनकी इच्छा का लिहाज किया। कुछ सरकारी और विद्वत्समाजों के प्रतिनिधियों तथा पत्रकारों के सिवाय प्रायः घर के लोग और अन्तरंग मित्र ही उपस्थित हुए थे। काशी की जनता के लिए अपना उत्साह रोकना कठिन था। सवेरे जब यह लोग गंगास्नान और विश्वेश्वर दर्शन करने के लिए निकले तो हर गली में जय-घोष हो रहा था। सभी मुख्य मन्दिरों में पाठ बैठाये गए थे परन्तु हवाई अड्डे पर ज्यादा भीड़ नहीं गयी।

———

पहिला पड़ाव

विजयादशमी, २११०—त्योहार का दिन और फिर बनारस में तो हर मुहल्ले में रामलीला होती है पर आज सारे नगर की दृष्टि सारनाथ की ओर थी। पडित की कोठी से थोडी दूर पर वह मैदान था जहाँ से जहाज उडने वाला था। यह पहिला जहाज था जो सौरमडल के बाहर जा रहा था। उस पर भारतीय जहाज और भारतीय उडाके। लोगों के चेहरों पर उत्कठा, उत्साह और आशा के साथ-साथ कुछ चिन्ता की स्पष्ट झलक थी। पत्रों के सवाददाता चारो मित्रो से भाँति-भाँति के प्रश्न करते जाते थ पर उनको बहुत कम उत्तर मिले। ऐसे अवसर पर कुछ अधिक कहना सम्भव भी नहीं होना।

छोटा सा यज्ञ हुआ। पुरोहित ने कलाइयो पर रक्षासूत्र बाँधे, नमस्कार-प्रणाम, आशीर्वाद हुआ। ठीक तीन बजे "मरुत्वान्" भूमि से उठा और इसके पहिले कि जय हिन्द की प्रतिध्वनि शान्त हो और गालों आँखों के आँसू सूखें, दृष्टिपथ से ओझल हो गया। उस समय उसका वेग प्रति सेकेंड लगभग चार कोस था। यदि इससे मद गति से चलाया जाता तो पृथ्वी का गुरुत्व नीचे खीच लेता। गुरुत्व और भी कई समस्याएँ उत्पन्न करता है। ग्रह छोट-बडे होते हैं। इसलिए ऊपर गुरुत्व भी न्यूनाधिक होता है। वही वस्तु बृहस्पति या शनि पर बहुत भारी, बुध पर बहुत हल्की हो जाती है। आकाश-यात्रियों को इस कठिनाई का बराबर सामना करना पडता है। बृहस्पति या शनि पर चलना दूभर हो जाता है, एक-एक पाँव मन-मन भर का हो जाता है, उधर बुध या चन्द्रमा पर शरीर

लगता है कि जरा-सा ऊपर उठाने से गेंद की भांति उछल
५३॥. चन्द्रमा पर इन्दुपुर नाम का जो उपनिवेश बसाया गया है उसमें जो बच्चे पैदा हुए हैं उनकी ऊँचाई साधारण मनुष्यों से कई गुना अधिक है।

गुरुत्व सबसे बडी समस्या तो आवागमन में उत्पन्न करता है। पृथिवी से पर्याप्त दूरी पर पहुँच जाने पर यह तमाशा देख पडता है। क्योंकि गुरुत्व से तो सहायता मिलती नही। यदि कोई चीज हाथ से छूट गई तो नीचे गिरने के बदले अधर में तैरती रहेगी। यदि भीतर बैठे मनुष्य थोडी सी लापरवाही करें तो वह भी योंही कमरे में उडते देख पडेंगे। इसलिए पृथिवीतल पर जितना गुरुत्व रहता है उतना जहाज के भीतर कृत्रिम उपायो से उत्पन्न करना पडता है। शक्ति एक है। वह विद्युत्, ताप, ध्वनि, प्राण आदि सैकडो रूपो में अपने को व्यक्त करती है। परमाणु के भीतर प्रवेश करके मनुष्य के हाथ उसका बहुत बडा भडार लग गया है। इसी के सहारे वह प्राकृतिक गुरुत्व को तिरोहित करता है, कृत्रिम गुरुत्व उत्पन्न करता है, अपने यान को चलाता है, उसमें प्रकाश करता है, उसके तापमान को शरीर के अनुकूल रखता है। पर हम सारी आयु पृथ्वी पर रेंगनवाले इन बातो को भूल जाते है।

एक बार घर छोडने पर चित्त कुछ खिन्न-सा हो ही जाता है। विदा होने के समय जो लोग उपस्थित होते है उनकी याद देर तक बनी रहती है और फिर माता, पिता, पत्नी जैसे अन्तरगों के चेहरे तो बहुत देर तक आँखो में छाये रहते है। एक-एक मकान, मन्दिर, नदी स्मृति के बिखरे धागो को बटोरने का केन्द्र बन जाता है। जो वस्तुएँ पहिले कुछ बहुत अच्छी न लगती थी, उनमें छिपी कमनीयता प्रतीत होने लगती है। और इन लोगो की यात्रा तो निराली थी। आज तक सौरमडल के बाहर कोई गया न था। न जाने क्या हो जाय? जहाज घर लौटे या न लौटे। यह

नदी, समुद्र और पहाड, गगा के यह घाट, फिर देख पडेंगे ? घरवालो से, मित्रो से, फिर भेंट होगी ? पृथिवी कितनी रमणीक है और मनुष्य-समाज कितना प्यारा है, यह तो आज ही समझ म आया। उत्साह था, कौतूहल था पर साथ में एक अव्यक्त भय था, एक वेदना थी। यह कमजोरी है, पर इसी दुर्बलता ने मनुष्य को महान बनाया है।

पहिले तो इन लोगो ने सोचा था कि उसी दिन सौरमडल के बाहर निकल जायँ परन्तु पडित का कहना था कि अल्पारम्भ क्षेमकर। पहिला कदम छोटा होना चाहिए। ऐसा ही किया गया। शनि के उपग्रह टाइटन पर आकाश-यात्रियो के लिए होटल है, यानो की मरम्मत का बडा कारखाना है। वही पृथिवी की सशस्त्र पुलिस की अन्तिम चौकी है।* कुछ लोगो ने आकाशयानो को लूटमार का साधन बनाना चाहा। दूर-दूर के ग्रहो पर छिपने-छिपाने का अच्छा अवसर मिलता ही है, इसी लिए सयुक्त राष्ट्रो की ओर से इस प्रकार की व्यवस्था करनी पडी। टाइटन का इतना भाग अन्ताराष्ट्रीय नियन्त्रण में है। पर अभी यह व्यवस्था स्थायी नही है। इन मार्गों पर दूसरे ग्रहो के भी आकाशयान चलते हैं। शुक्र और मगल के निवासी तो इस विद्या में बहुत पटु है। स्वभावत उनको पृथ्वीवालो के नियन्त्रण में काम करना पसन्द नही है। अत दो ही उपाय रह गए है, या तो आपस म युद्ध हो या कोई अन्तर्ग्रह सस्था बन जाय जिसमें सभी ग्रहो के प्रतिनिधि मिलकर इन बातो का प्रबन्ध करें। आजकल इन्ही प्रश्नो पर विचार करने के लिए सौरमडल के सभी सभ्य ग्रहो के प्रतिनिधियो की बैठक ईरास पर हो रही है। ईरास की सरकार आतिथ्य कर रही है। ईरास मगल और गुरु के

* स्वय शनि का वायुमडल बहुत घना है और अमोनिया गैस से भरा है। उसमें साँस लेना सभव नही है।

बीच में एक अवान्तर ग्रह है। है तो बहुत छोटा सा पिंड पर उसकी सस्कृति बडी ऊँची है।

यह लोग इसके पहिले भी शनि प्रान्त में आ चुके थे पर आज वह अधिक प्रिय लग रहा था। इनके लिए वह सुपरिचित सौरमडल और अपनी पृथ्वी का प्रतीक बन गया था। सूर्य २ करोड ३२ लाख कोस दूर था। उससे बहुत कम गर्मी मिल रही थी। उसका पीला कलेवर प्रकाश भी कम दे रहा था, फिर भी देखने में प्यारा लगता था। टाइटन के होटल के बाग में चीड देवदारु के सजातीय जो वृक्ष थे उनको कल्पना ने मखमल का चादर ओढा दिया था।

सध्या हुई। सवलय शनि उदय हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने इस ग्रह को तीन लडो की रत्नमेखला पहिना दी है। उस दिन टाइटन के अतिरिक्त चार चन्द्रमा क्षितिज के ऊपर थे। शनि पर से मेखला में चलते फिरते हीरो से लग रहे होगे। सूर्य्य की दूरी ने अँधेरे को घना बना दिया था पर मेखला के असख्य कणो से टकराकर क्षीना प्रकाश भी आकाश को अद्भुत सौन्दर्य दे रहा था। हम पृथिवी पर से उसका अनुमान नहीं कर सकते।

होटल में पृथिवी जैसा भोजन मिला। इसके आगे न जाने कितने दिनो के लिए टिन में भरे खानो से ही काम चलाना था।

कारखाने के इजिनियर ने जहाज को देखा। उसमें कोई खराबी न थी। पृथिवी के लिए अन्तिम निमूत्र सन्देश भेजा गया और दूसरे दिन मरुत्वान् निष्पय गगन में उतर पडा। टाइटनस्थित पार्थिवो के मूक आशीर्वाद उसके साथ थे। जहाज का मुँह मित्रा की ओर था।

आकाश-गंगा की धारा में

इनका विचार था कि पहिले चित्रा प्रदेश में भ्रमण करें, फिर अभिजित् होते हुए सप्तर्षि-मंडल में प्रवेश करें। उन दिनों सूर्य्य कन्या राशि में था, इसलिए चित्रा एक प्रकार से बहुत निकट प्रतीत होता था।

ज्यों-ज्यों जहाज आगे बढ रहा था, सौरमंडल पीछे छूटता जा रहा था। ग्रह तो कब के अदृश्य हो चुके थे। सूर्य्य भी छोटा-सा पीला तारा मात्र रह गया था। अभिजित् तक पहुँचते-पहुँचते स्यात् उसके लिए दूरबीन की आवश्यकता पड़ेगी।

आकाशगंगा को हम प्रतिदिन देखते हैं। उसके मुख्य तारों और तारक-पुंजों को पहिचानते हैं। हमारा सूर्य्य स्वयं उसमें है। हमने पढ रक्खा है कि इस नीहारिका में कम-से-कम १ अरब तारे हैं और विश्व में कम-से-कम १ करोड नीहारिकाएँ हैं। पुस्तकों में यह सब लिखा है। ज्योतिषियों ने एडी-चोटी का पसीना एक करके उस ज्ञान का संग्रह किया है। परन्तु पुस्तक-पुस्तक ही है। वह वास्तविकता की छाया के पास भी तो नहीं पहुँचाती।

इनका जहाज आगे बढा जा रहा था। निराधार, अनन्त, निःसीम, जैसे शब्दों का अर्थ अब बुद्धि में समाता जा रहा था। पृथ्वी पर तो वायुकणों के कारण आकाश में नीलिमा की प्रतीति होती है पर शून्य में न वायु है न नीलिमा। घोर, निबिड, कालिमा और उसके वक्ष को चीरकर प्रकाश के छोटे-बडे विन्दु। आगे, पीछे, चतुर्दिक् अन्धकार। वस्तुत. इस जगह पहुँचकर आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, दाहिनें, बायें का कोई

अर्थ नही रह जाता। जहाँ निकटतम नक्षत्र अरबों कोस दूर हो वहाँ अपनी गति का भी अनुभव नही होता। हाँ, डाप्लर का नियम निश्चय ही सहारा देता है। यह नियम बहुत ही सरल है। यदि हम भीड में पड जायें तो जिस दिशा में हम बढ रहे होंगे उधर की भीड छँटती-सी प्रतीत होगी और हमारी पीठ की ओर घनी होती सी देख पडेगी। यही बात आकाश में होती है। जिस ओर हम बढते है, उधर के तारे कुछ खुलते से लगते है। उसकी विपरीत दिशा में पास आते से प्रतीत होते है। इस प्रकार हम बहुत दूरी से भी उस दिशा का अनुमान कर सकते है जिस ओर हम बढ रहे है। सूर्य्य स्वय अपने ग्रह-परिवार के साथ अभिजित् की ओर बढ़ता जान पडता है परन्तु मरुत्वान् तो सूर्य्य को कब का छोट चुका था। उसको सूर्य्य की गति से कोई सहायता नही मिल सकती थी। केवल यह बात न न थी कि जहाज के चलने से तारे हटते-बढ़ते देख पडते थे। उनमें वास्तविक गति थी। आकाशगगा में कई धाराएँ सी प्रतीत होती थी और एक-एक धारा में लाखो तारे बुद्‌बुदों की भाँति बहे जा रहे थे। कही तारा के परिवार थे। एक दूसरे से अरबो कोस दूर होते हुए भी परिवार के तारो की गति एक दूसरे से बँधी थी, जैसे कदम मिलाकर चलते हो। किसी-किसी परिवार में कई रगो के तारे थे। यदि इनके साथ ग्रह होगे तो उनमें एक साथ कई रग-बिरगे सूर्य्य उदय होते होगे।

नीहारिकाएँ ही वह सलिल, वह अप् तत्व है जिसमें से असख्य सूर्य्यों का जन्म हुआ है, जिसमें यह सब फिर विलीन होगे। इनकी आँखो के सामने सृष्टि का खल हो रहा था। जगह-जगह पर नीहारिका में फैले हुए गैस के अणु एक दूसरे को आकृष्ट करके पास आ रहे थे। करोडो कोस का विस्तार लाखो में सकुचित हो रहा था, सन्निहित परमाणुओं का टकराना प्रकाश और तेज को जन्म दे रहा था, नयी गैसो, नये तत्वो को जन्म दे

रहा था। जो कुछ इनकी आँखें देखती थी और जो सस्कार इनके कैमरा के प्लेटो पर पड रहे थे वह इस बात की सूचना दे रहे थे कि यह पुज एक दिन सूर्य्य और नक्षत्र-गुच्छ बनेंगे। नीले बाल-सूर्य्य, श्वेत युवा सूर्य्य, पीत प्रौढ सूर्य्य और लाल वृद्ध सूर्य्यों के ढेर-के-ढेर मिलते थे। पता नही इनमें से किस-किसके साथ ग्रह थे और किस-किस ग्रह पर प्राणी बसे हुए थे। मृत सूर्य्य भी थे और उनसे खतरा था। वह सर्वथा ज्योतिर्हीन है, इसलिए अदृश्य हो गए है। बस निकट आने पर गुरुत्व ही उनका परिचय देता था। एक और बात थी। कभी-कभी कोई मृत सूर्य्य किसी दूसरे खेचर पिंड से टकरा जाता था, कभी उसके भीतर ही ज्वालामुखी सा फूट पडता था। थोडी देर के लिए आकाश के उस प्रदेश में नया तारा देख पड जाता है। ऐसे समय ताप और विद्युत् की जो लहरें उठती है उनके थपेडो से बचना कठिन होता है।

आकाश में नदी की भाँति आवर्त, भँवर, होते है। परमाणुओ के सघर्ष, नये पिंडो के बनने और पुराने पिंडो के टूटने से, बिजली की प्रबल तरगे उठती है। इनके आघात-प्रतिघात से आकाश का कोई-कोई खड विद्युन्मय बन जाता है। उसकी नाभि में पडकर जहाज की खैरियत नही हो सकती। इसी लिए इच्छा रहते हुए भी महत्वान् बहुत से दृग्विषयो से दूर ही रखा जाता था।

जहाँ कोई बडा मकान बनता है वहाँ कुछ-न-कुछ मलवा बच रहता है। ईंट के टुकडे, बालू और सीमेंट के कण, इधर-उधर पडे रह जाते हैं। यही अवस्था ब्रह्माड में भी है। सूर्य्य, ग्रह, उपग्रह बनते है पर कुछ सामग्री बच रहती है। छटाँक दो छटाँक से लेकर दस-बीस मन के टुकडे यों ही फिरे फिरते है। यदि यह पुजीभूत हो जाते तो इनसे कई बडे-बडे ग्रह बन जाते पर अब तो यह ठडे हो गए है, मिल नहीं सकते। अगस्त और नवम्बर

में पृथिवी दो ऐसे ढेरो के बीच में से निकलती है। उन दिनो गुरुत्व इनमें से हजारो को खींच लेता है। तारो के टूटने से आतिशबाजी का आनन्द आता है। इसी प्रकार उल्कापात के रूप में यह ग्रहो पर गिरते और छोजते जाते हैं। कुछ केतु रूप से लम्बा वृत्त बनाकर किसी सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। हाली केतु को हमारे सूर्य्य की परिक्रमा मे पचहत्तर वर्ष लगते हैं। पर कुछ ऐसे भी टुकडे हैं जो आकाश में अकेले निरुद्देश्य चल रहे हैं। कब से चल रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं, कोई नही कह सकता। सम्भव है नियति के विशाल उद्देश्य के भीतर इनके लिए भी कोई स्थान हो।

आकाश के इन बटोहियो से जहाज का पदे-पदे सामना होता था। बडो को तो किसी प्रकार बचाया जा सकता था, पर छोटो से कहाँ बचा जाय? यदि जहाज की बनावट मजबूत न होती तो इस गोलेबारी से कब का चकनाचूर हो जाता। यदि पृथिवी होती तो हवा के कणो से रगड-कर यह पिंड जल उठते, पर यहाँ तो हवा थी नही, अँधेरे में ही बरसते रहते थे।

आकाशगगा के बीच में जितने तारे है, उतने अचल पर नही है। यहाँ करोडो कोस तक कुछ न होते हुए भी तारो की और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दृश्यियो की भरमार थी। जिधर आँख उठती थी कोई-न-कोई महती, कोई-न-कोई सुन्दर, कोई-न-कोई भयावनी कृति दृष्टिगोचर होती थी। यदि "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति" रमणीयता का लक्षण हो तो यह नीरव,

रस में विष

इन लोगो का जी बार-बार चाहता था कि रुककर किसी ग्रह की सैर की जाय। कुछ ग्रह ऐसे मिले जिन पर या तो वायुमडल था ही नहीं या उसमें क्लोरीन, गन्धक, कार्बोनिक ऐसिड या किसी अन्य ऐसी गैस की बहुतायत थी जिसमें मनुष्य साँस नही ले सकता था। चित्रा सुन्दर तारा है, हमारे सूर्य्य से बड़ा है। उसके चारो ओर कई ग्रह और कुछ ग्रहों के साथ उपग्रह भी देख पडे। इन लोगों ने एक ग्रह को पसन्द किया। यत्रो से पता चला कि उसका वायुमडल पृथिवी से मिलता-जुलता है यद्यपि उसमे कार्बन किंचित् अधिक है। जल भी पर्याप्त मात्रा में है। हरियाली ऊपर से ही देख पडती थी। थोडी देर तक मँडलाने के बाद एक समथर मैदान देखकर जहाज उतारा गया। सध्या होने आयी थी।

इतने दिनो तक बन्द रहने और कृत्रिम हवा से साँस लेने के बाद यह लोग इस भूमि पर पाँव रखते फूले न समाये। अँगडाई ली, हाथ-पैर सीधा किया, जी भरकर खुली हवा फेफडो मे भरी। यह विचार हुआ कि आज के दिन तो दूर न जाया जाय पर दूसरे दिन यहाँ की सैर की जाय। देखा जाय कि यहाँ कोई पशु-पक्षी भी रहते है या नही। सम्भव है मनुष्य जैसा कोई बुद्धिशील प्राणी भी हो।

मैदान के चारो ओर कोसो तक वृक्ष थे। उनकी पत्तियाँ पीपल से मिलती-जुलती थी परन्तु वृक्ष की उँचाई पीपल की दूनी से कम न थी। तमाशे की बात यह थी कि सध्या का समय था परन्तु चिडियो का कलरव बिल्कुल नही सुन पडता था। इस ओर इनका ध्यान जाना स्वाभाविक था।

थोडी देर तक आपस में इसका चर्चा रहा। फिर यह सोचकर कि थोडी देर टहल लेना लाभदायक ही होगा, यह लोग एक ओर बढ़े। पेडो का झुरमुट वहाँ से दो या ढाई कोस के लगभग होगा।

जिस समय जहाज उतरा था, हवा चल रही थी। डालियाँ हिल रही थीं, पत्तियो का मधुर मर्मर सुन पड रहा था। जहाज के उतरने के बाद ही हवा बन्द हो गयी, प्रकृति जैसे निस्तब्ध-सी हो गयी। पहिले तो इन लोगो का ख्याल उधर नही गया परन्तु वृक्षो की ओर पाँव बढाते ही एक ऐसी घटना हुई जिसने उस दृग्विषय का स्मरण कराया। निस्तब्धता यकायक भग्न हुई। बडे वेग से हवा चली, पेड हिलने लगे। नीरवता को चीरकर घोर रव हुआ। पत्तो का हिलना और उनके हिलने से शब्द का उठना कोई विलक्षण बात न थी। परन्तु यह साधारण शब्द न था। इसमें हुकार था, धमकी थी, उलाहना था, ललकार थी। इसका स्रोत हवा और पत्तियो की रगड न थी, स्पष्ट ही यह किसी प्राणी का उद्गार था।

कम-से-कम हमारे यात्रियो को एसा ही प्रतीत हुआ। इनके शरीर सिहर उठे, पाँव रुक गये।

रमेश—भाई न जाने मुझे क्यो डर लगता है। यह आवाज आयी तो इन पेडों से ही पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमको चेतावनी दी जा रही हो कि दूर रहो।

अद्वैत—परन्तु वृक्ष और चेतावनी, यह बात कुछ समझ में न आयी।

पडित—इसमें जरा भी असम्भावना नही है। चेतना का निवास सर्वत्र है पर कही यह इतनी दबी रहती है कि हमें उसका पता नहीं लगता और हम जड शब्द का प्रयोग कर देते हैं। हमारे वृक्षों में चेतना प्रसुप्त नहीं तो स्वप्नावस्था-सी है। आज बसु के बाद जो प्रयोग हुए हैं इनसे यह बात सिद्ध हो चुकी है। यह सर्वथा सम्भव है कि किसी

अन्य परिस्थिति में इसके विपरीत हो अर्थात् वृक्षो की चेतना जागरित हो जाय, उनकी बुद्धि का विकास हो। वह अचल है इसलिए उनकी बुद्धि अपने लिए हमसे भिन्न प्रकार के साधनो का उपयोग करेगी। उनके सामने जीवन के जो लक्ष्य होगे उनकी हम कल्पना भी नही कर सकते।

अद्वैत—तो क्या प्रत्येक वृक्ष मनुष्य की भाँति पूर्ण चेतन प्राणी हो सकता है?

पंडित—हो सकता है। है या नही, यह मै नही कह सकता। एक बात और हो सकती है। जिस प्रकार हमारे शरीर के असख्य जीवकोष जीवित है परन्तु सब के ऊपर एक व्यापक चेतना, जीवात्मा, है उसी प्रकार सब वृक्षो में आशिक जीवन हो और इनकी समष्टि में इनके विराट चेतन का निवास हो। क्या है मै नही कह सकता, परन्तु हम आज नये अनुभव के समक्ष है।

इधर इन लोगो में यह बातें हो रही थी, उधर नरेश एक छोटे पेड की ओर बढ गया जो औरो से कुछ आगे था। उसके उधर बढते ही फिर सन्नाटा छा गया और वह पेड पीछे की ओर झुका। प्रत्येक डाली नरेश की ओर से हट गयी। और फिर सारा वृक्ष नरेश पर टूट पडा। उसने नरेश को पत्तियो में लपेट लेना चाहा। पत्तियाँ जहाँ छू जाती थी, बिच्छू के डक मारने-सा लगता था। कई जगह लहू-लुहान हो गया। सब लोग उसकी सहायता को दौडे पर तब तक नरेश किसी प्रकार अलग हो गया था। पेड उसकी ओर झुका पर उसने अपने खड्ग की भस्मक किरण से उसे राख का ढेर बना दिया। उसके भस्म होते ही सन्नाटा फिर टूटा। पेडो से फिर क्रोध की गरज निकली, पर इस बार उसके साथ भय का सञ्चारी स्वर भी मिला हुआ था।

यह लोग लौट पडे। नरेश की मरहमपट्टी तो करनी ही थी। आगे

का कार्यक्रम भी सोचना था। रात हो आयी थी। उस समय कुछ हो भी नहीं सकता था। इनको इतना भरोसा था कि अन्ततोगत्वा यह वनस्पति है, हमारे पास नहीं आ सकते और फिर हमारा जहाज अष्टधातु से भी मजबूत है। सब खिडकी किवाड़ो को बन्द कर के आराम से सोये।

प्रातःकाल इन लोगों ने जो देखा उससे इनके छक्के छूट गये। जंगल बहुत आगे बढ आया था। जड़ें चारो ओर फैली हुई थी। उनमें से पेड़ निकल रहे थे। भूमि पथरीली थी, सम्भवतः इसी से मैदान बच रहा था पर अब तो प्राणो की बाजी लगाकर जड़ें चट्टानो से लड रही थी। यदि यों ही प्रगति रही तो सायंकाल तक पेडो का अभेद्य आटोप बन जायगा और जहाज का निकलना असम्भव हो जायगा। इतना ही नही था। भूमि में से निकलकर बहुत-सी बेलो ने जहाज को घेर लिया था और उसे रस्सियो से जकड लिया था। एक डाल काटिये, दूसरी निकल आती थी।

यहाँ टिकना प्राणो से हाथ धोना था। जल्दी से निकल जाना श्रेयस्कर था। सबसे पहिले तो बेलो से छुटकारा पाना था। बिजली से जलाना पडा, जहाज के चारो ओर की भूमि पर सूखी पत्तियो और डालो में आग लगायी गयी, तब जाकर यह शत्रु रुका।

परन्तु पेड जागरूक थे। उनको यह अवगत हो गया कि शिकार हाथ से निकल जाया चाहता है, उन्होंने नये अस्त्र का प्रहार किया। उनकी पत्तियो पर पानी के बूंद जम गये जो बडे होकर टपटप भूमि पर गिरने लगे। भूमि पर गिरते ही पानी भाप बन जाता था। देखते-देखते ऊपर बादल छा गया और उसमें से बिजलियाँ टूटने लगी। शत्रोरपि गुणा वाच्या; अपनी रक्षा की चिन्ता तो थी ही पर वनस्पतिराज के इस व्यावहारिक विज्ञान की प्रशंसा इन लोगो के होठो पर भी थी। सौभाग्य यह थी कि इस प्रहार का प्रतिकार इनके लिए कठिन न था। ऐसी

परिस्थितियो के लिए पहिले से ही प्रबंध था। जहाज के चारो ओर विद्युच्छत्र, बिजली का इतना प्रबल घेरा जिसको भेदकर बाहर की बिजली भीतर न आ सके, फैला दिया गया। यह कठिन बात न थी। ऋण और धन विद्युत् एक दूसरे को काटती है। बाहर के बादलो से जितना धन विद्युत् गिर रहा था उतनी ही मात्रा मे जहाज के चारो ओर ऋण विद्युत् का जाल बिछा दिया गया। दोनो ने टकराकर एक दूसरे को हतप्रभ कर दिया। जहाज बाहर निकल गया।

जगल एक बार फिर गरजा। उसकी तात्कालिक हार हुई। एक व्यक्ति मारा गया। शत्रु भाग तो गया पर इस देश का परिचय पा गया। हो सकता है कि दूसरी बार वह और दल-बल समेत आये और जगल को नष्ट करके अपना उपनिवेश बसाये, सम्भव है जगल के चित्त में यह विचार स्फुट या अस्फुट रूप से उठ रहे हो। परन्तु हमारे यात्री कुछ और ही सोच रहे थे। एक दिन मनुष्य यहाँ फिर आ सकता है, यह भूमि उसके बसने योग्य है पर यह वृक्ष भी सावधान हो गए है। तब तक विज्ञान में यह न जाने कितनी उन्नति कर लेगे। मनुष्य और वनस्पति के युद्ध मे मनुष्य की ही जीत होगी, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता।

पडित ने इस प्रदेश का नाम अन्तकारण्य रख दिया।

संध्या और प्रभात

(क) सध्या

कुछ दिनो के लिए तो ग्रहों की सैर की साध पूरी हो गयी पर जो कुतूहल उनको इतनी दूर लाया था वह भला कब तक सोता। आखिर घर मे इसी लिए तो निकले थे। फिर किसी ग्रह पर उतरने का निश्चय किया गया।

स्वाति बोओते पुंज का एक तारा है। हमारे सूर्य का समकक्ष है। उसके साथ कई ग्रह है। जलवायु की दृष्टि से सभी उपयुक्त प्रतीत हुए। एक दिन यह लोग उनमें से एक पर उतरे। उसका नाम इन लोगो ने आगे चलकर अन्धकार रखा। एक पहाडी की उपत्यका में जहाज उतारा गया। छोटी सी नदी बह रही थी। फलो के वृक्ष थे, जो पृथिवी के फलो से मिलते-जुलते थे। कुछ छोटे पशु भी देख पडे जिनकी आकृतियाँ बहुत अपरिचित नही थी परतु सब के शरीर लम्बे बालो से ढँके थे। यह जलवायु की कोई विशेषता रही होगी।

बहुत दिनो के बाद बहते पानी में नहाने और ताजे भोजन खाने का अवसर मिला था। शिकार किया, ताजा मास मिला, फल थ ही। थोडी देर धूप में आराम किया, फिर आगे बढे।

जो दृश्य सामने आया उसने आश्चर्यचकित कर दिया। एक बार तो आँखो को विश्वास न हुआ। पहाड से थोडी दूर पर एक विशाल नगर का ध्वस्तावशेष था। पहाडी नदी के किनारे बसा था। सगमर्मर जैसे किसी

पत्थर के घाट बने थे, जो अब प्राय टूट चुके थे। बड़े-बड़े प्रासाद, कई मंजिल ऊँचे घर, चौड़ी सड़कें, दूकान, सभी इस नगर की अतीत सम्पन्नता की साक्षी दे रही थी। लकड़ी के सामान को तो दीमक नष्ट कर चुके थे परन्तु धातु के बड़े-छोटे बर्तन बच रहे थे। मकान प्राय पत्थर के थे, उन पर की बारीक कारीगरी अब भी कुछ-कुछ बच रही थी। एक विशाल भवन मे जो किसी समय वेधालय रहा होगा, अब भी ज्योतिष के यन्त्र रखे हुए थे। एक पुस्तकालय भी मिला। उसमें किसी धातु के पतले पत्रो पर खुदी बहुत-सी पुस्तकें सुरक्षित थी। नगर में कई बाग थे पर उनकी क्यारियो में जगल उग आया था, फौवारे टूटे पडे थे। धातु के कुछ ऐसे कल-पुरजे भी इतस्तत पडे मिले जो सम्भवत. मोटर-जैसी किसी सवारी के अग थे। नगर के बाहर कभी खेत रहे होगे पर अब वहाँ घना जगल था। बीच-बीच में कुओ और मकानो के खँडहर दख पड जाते थे।

निश्चय ही यहाँ किसी समय सभ्य लोग रहते थे। उनकी सस्कृति का स्तर ऊँचा रहा होगा। विद्याव्यसनी थे, विज्ञान में पटु थे। इनकी आकृति का अनुमान पत्थर और धातु की मूर्तियो से हो सकता था। लम्बे और हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले लोग थ, चेहरे की बनावट मगोल ढग की, चीनियो से मिलती-जुलती थी परन्तु सारा शरीर बडे-बडे बालो से ढँका था। इस प्रकार की मूर्तियो की बहुतायत से अनुमान होता था कि वह तत्कालीन नर-नारियो को देखकर बनायी गयी थी।

यह लोग क्या हुए ? सब के सब नष्ट हो गए या सन्तति छोड गए ? दो-चार दिनो में इस प्रश्न का उत्तर मिल गया।

मुख्य नगर से कुछ दूर पर एक छोटी बस्ती थी। कभी वह उपनगर रहा होगा। वहाँ छोटे-छोटे बाग और घर थे। नदी भी बगल से बह रही थी। एक दिन यह लोग उधर निकल गए। अभी बस्ती में प्रवेश भी नही

किया था कि मनुष्यों जैसी बोली सुन पडी, चौंके। इतने में सामने से २०-२५ व्यक्ति निकल आये। पीला रंग, चीनी बनावट, बड़ी बालों से लदे शरीर, पर उनमें से कोई भी पांच फुट से ऊँचा न था। कई तो बौ से लगते थे। अपनी बोली में कुछ गा रहे थे। स्वर बच्चों जैसा, राग ं दर्द था। चेहरों से भी निराशा टपकती थी। इन लोगों को देखकर ठिठके फिर डरते-डरते आगे बढे, पास आकर पैरों पर गिर पड़े। बहुत पुचकारने पर खड़े हुए। यह स्पष्ट हो गया कि जिन भीमकाय महापुरुषों ने पास वे नगर का निर्माण किया था उनके ही यह गए-बीते वशज हैं।

अब न तो वह भारत की भाषा समझते थे, न हमारे यानी उनकी बोली जानते थे। ऐसे ही अवसर के लिए दृष्टिध्वनि यन्त्र रक्खा था। उसके द्वारा इन लोगों के इतिहास का जो परिचय मिला उसका साराश यह है:

बहुत काल बीते जब सृष्टि का आदियुग था, इन लोगों के पूर्वज कहीं बहुत दूर से इस ग्रह पर आए थे। वह लोग तुर्वसु कहलाते थे और ऊषा, पूषा, नासत्य, महोवा और इग्नि की उपासना करते थे। वह इस ग्रह को ऐलवर्त कहकर पुकारते थे। यहाँ वह लोग फले-फूले, सारे देश में फैले। नगर बसाये, राज्य का विस्तार किया। उन लोगों ने बड़े प्रबल यन्त्र बनाये, जिनकी सहायता से वह दूसरे ग्रहों पर जा सकते थे और घर बैठे सहस्रों कोस की वस्तुओं को अपने यहाँ मँगा सकते थे। ज्यों-ज्यों ऐसे यन्त्र बनने लगे, त्यों-त्यों उन्होंने हाथ से काम करना छोड़ दिया। जब बिना परिश्रम के सब चीजें प्राप्त हो सकती थीं तो फिर श्रम क्यों किया जाय? इसका परिणाम कुछ ही पुश्तों में देख पडा। शरीर छोटे और दुर्बल हो गए, चित्त भी आलसी हो गए, काम न होने से विलासिता बढ़ गयी। गम्भीर विषयों में रस जाता रहा, विज्ञान और कला की उन्नति रुक गई। कई रोगों ने जनसख्या घटा दी। इनका एकमात्र सहारा इनके यन्त्र थे पर

अब उनको चलाए कौन? यन्त्रो को चालू रखने के लिए विज्ञान में नयी खोज होती रहनी चाहिए। जो शक्ति मशीनों को चलाती थी उसका भडार भूगर्भ में था। उसपर थोडे से स्वार्थी लोगो ने कब्जा कर लिया। कुछ दिनो तक उनका आधिपत्य रहा। शेष जनता उनकी क्रीतदास हो गई पर अन्त में वह आपस में लड पडे और यन्त्र-सचालन की विद्या उनके साथ विलीन हो गई। ऐश्वर्य का साम्राज्य और सुख-समृद्धिकाल भी समाप्त हो गया। बाहर से वस्तुओ का आना बन्द था, स्वय न खेती करने की शक्ति थी न कुछ अन्य वस्तुओ के उत्पादन की क्षमता थी। प्रकृति ने सब कुछ दे रक्खा था पर हृदय में उत्साह नहीं रह गया था। कुछ फल-फल और कद-मूल खाकर दिन बिता रहे थे, शिकार करने का भी शौक नहीं था, रात में उन्ही खँडहरों में छिपकर सो रहते थे। कभी-कभी पशु भीतर घुसकर एकाध को उठा भी ले जाते थे। दिनोदिन सख्या घटती जा रही थी। अपनी जाति की मृत्यु के दिन गिन रहे थे। देश में ऐसे कई और नगर और बस्तियाँ थी, वहाँ भी ऐसे ही थोडे-थोडे व्यक्ति पडे थे।

यह सारा वृत्तान्त कई बैठको में मिल पाया। वह लोग पढना-लिखना जानते न थे, इतिहास भला क्या बता पाते। कुछ कहानियाँ, कुछ गाथाएँ, कुछ गाने, हाँ अतीत की स्मृतियो का भार ढो रहे थे। इनके उच्चारणकाल में दृष्टिध्वनि के पट पर जो चित्र बनते थे वह बहुत ही अस्पष्ट और भ्रामक होते थे। उनके पीछे भावना, ममता, उत्साह का अभाव होता था। किसी प्रकार जोड-जोडकर इतना इतिवृत्त बन पाया। हम लोगो ने इस बात का बहुत यत्न किया कि इन अभागो में कुछ स्फूर्ति फूँकें। पूर्वजों के कृत्यो को दिखलाकर कुछ साहस का सचार करायें परन्तु सारा यत्न विफल हुआ। कोई-कोई मनुष्य असफलताओ के निरन्तर थपेडो से थककर जीवन से निराश हो उठता है परन्तु एक सम्पूर्ण जाति में यह बात कभी

देनी नहीं गयी। कई हजार मनुष्य-जैसे प्राणी निरद्यम होकर अपनी सामूहिक मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे थे।

यों तो किसी भी विपन्न के साथ सहानुभूति होनी हैं पर यहाँ तो सामवेदना का एक और कारण था। इनके इतिहास की कड़ियाँ भारत से मिलती थीं। तुर्वसु जाति का ऋग्वेद में उल्लेख है। ऊषा (उषा), पूषा, नासत्य, इग्नि (अग्नि) और महोवा (मघवा) वैदिक देवताओं के नाम हैं। देश का नाम ऐलवर्त उस इलावर्त से मिलता है जिसका पुरानी पुस्तकों में उल्लेख है। क्या आर्यों की कोई शाखा यहाँ आकर बसी थी? बहुत दूर से आने की स्मृति तो इसी बात की ओर संकेत करती थी। पर कब *आये, कैसे आये? यदि नहीं आये तो आर्य्यों के परिचित नाम यहाँ कैसे* पहुँचे? क्या सचमुच आर्य्यजाति की एक शाखा अवसाद के गर्त में गिर रही थी? जो भी हो, आंखों के सामने एक जाति के जीवन की सन्ध्या रात्रि के अंचल में सदा के लिए छिपने जा रही थी।

इन लोगों को इनके भाग्य पर छोड़ने के सिवाय कोई उपाय न था विदा होने के पहिले इन्होंने वहाँ की यादगार में कुछ धातुमयी पुस्तकें रख ली, ज्योतिष-सम्बन्धी एकाध छोटा यन्त्र उठा लिया और पत्थर की कारीगरी के दो-एक नमूने ले लिए।

(ख) प्रभात

इस मुमूर्षुलोक के निवासियों के अल्पकालीन सहवास ने हमारे यात्रियों पर भी कुछ तो अपना जादू डाला ही। नैराश्य की कोई बात तो थी नहीं, पर उनका भी उत्साह कुछ ठंडा सा हो गया। किसी ने मुँह से कुछ नहीं कहा, परन्तु एक बार सबके मन में यह विचार दौड़ गया कि घर लौट चलें। इतनी यात्रा बहुत है, और जो कुछ देखा-सुना जायगा उसमें बहुत नवीनता क्या होगी? और हुई भी तो फिर क्या, अन्त में तो मरना है। व्यक्ति,

राष्ट्र, जाति, सभ्यता, कुछ भी तो चिरस्थायी नहीं है। सब से पहिले पंडित ने अपने को सँभाला। उनके दार्शनिक अध्ययन से बड़ा सबल मिला। जहाँ केवल भौतिकता का गर्व चूर्ण हो जाता है और वह परकँच कबूतर की भाँति लडखडाकर गिरने लगती है वहाँ आध्यात्मिकता सहारा देती है। भौतिक शक्ति अगत्या अपने आप तक ही सीमित रहती है। अध्यात्म वह वृत्त है जिसका केन्द्र सर्वत्र है परन्तु व्यास का कहीं ओर-छोर नहीं है। चरित्र की परख आकाश को गोष्पद के समान पार करने में नहीं वरन् प्रत्येक अवस्था में निर्वातस्थान में रखी दीपशिखा के समान स्थिर और निश्चल रहने में है। कुछ देर में

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भू, मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्म्मणि॥

के सिद्धान्त के सामने कृत्रिम वैराग्य समाप्त हो गया।

तब यह निश्चय हुआ कि इस परिवार का एक ग्रह और देखा जाय। सम्भव है उस पर भी मनुष्य हों, उन लोगों ने भी सभ्यता का विकास किया हो। कौन जाने, वहाँ भी इस बात का कोई प्रमाण मिले कि किसी समय भारत की संस्कृति की प्रतिध्वनि करोडो कोसो के पार तक पहुँचती थी।

जिस ग्रह को इन लोगो न चुना वह तीन-चार घंटे की दूरी पर था। जलवायु उसका भी ठीक था। उस पर भी घने जगल थे। उसके बीचोंबीच पर्वतमाला चली गई थी। उसकी ऊँची चोटियाँ तो हिमाच्छादित थी पर अञ्चल भाग बहुत रमणीक था। यहाँ भी एक अधित्यका पर जहाज उतारा गया। यहाँ भी भोजन की पूरी सुविधा थी, फल थे, परिचित जातियो के शिकार के योग्य पशु थे।

थोडा-बहुत साम्य होते हुए भी दोनो ग्रहों में बडा अन्तर था। इस नये देश में जगल बहुत घने थे। वहाँ कभी सभ्यता का प्रसार हुआ

था, जगल काट डाले गए थे, जो छोड़ भी दिए गए थे उन पर नियन्त्रण था। नियम न हट जाने पर भी पूर्ववत् अवस्था नहीं आ सकती थी। मकानों और बागों में भी पेड निकल आए थे परन्तु बीच में खाली जगह मिलती ही थी। यहाँ जगल स्वच्छन्द था। उसने कुल्हाडी की चोट नहीं सही थी। पुराने ग्रह के बहुत से हिंस्र पशु मार डाले गए थे। जो बच गए थे या जो पालतू से जगली हो गए थे उनकी सख्या कम थी और वह अपेक्षया छोटे भी थे। यहाँ का पशु-जगत निर्बाध था। उसका मनुष्य से या मनुष्य-जैसे किसी प्राणी से पाला पडा ही न था। हमारे यात्रियो को देखकर यहाँ के पशु घबराते न थे, अपने कामो में लगे रहते थे। यह इस बात का प्रमाण था कि उन्होंने अब तक शिकारियों के आक्रमण को नहीं जाना था।

साधारण परिचित जातियो के पशु जैसे हिरन, महिष, बन्दर, सूअर तो थ ही, बहुत से ऐसे जीव थे जिनका जवाब पृथ्वी पर नही मिलता। चमगादड यहाँ भी होते है पर वहाँ एसा चमगादड था जिसके पखो का फैलाव २० फुट से अधिक जाना था। शरीर इतना पुष्ट था कि अच्छे बड गधे को उठा ले जा सकता था। गिद्ध का आकार शुतुर्मुर्ग से दूना और फिर शुतुर्मुर्ग उड नहीं सकता। गिद्ध उडता था। वहा के कछुओ को देखकर उस पुराणोक्त कूर्म की स्मृति हो आती है जिसकी पीठ पर मन्दराचल रखकर समुद्र मथा गया था। तीन-तीन, चार-चार फुट की तितलियाँ होती थी।

इन जीवो को देखकर आश्चर्य भले ही हो फिर भी इनको बिल्कुल अदृष्टपूर्व नहीं कह सकते। पर यहाँ तो ऐसे भी पशु थे जिनको देखकर यह सन्देह होने लगता था कि कहीं यह सब स्वप्न तो नहीं है। कभी ऐसे प्राणी पृथिवी पर भी थ। उनमें से कुछ की हड्डियाँ अब भी मिलती है परन्तु उनको नष्ट हुए कई लाख वर्ष हो गए। आज सरीसृप में सबसे

बलवान् अजगर और मगर हैं, कभी डाइनोसार होता था जो बड़े से बड़े मगर को बगल में दबाकर उसी प्रकार छलांगे भर सकता था जैसे बालि रावण को लेकर घूमा करता था। टेरोडेक्टाइल चिड़िया थी पर उसे दाँत थे। रमेशचन्द्र प्राणिशास्त्र के पंडित थे। उन्होंने यह सब पढ़ा था। प्रसिद्ध कौतुकागारों में इनकी अस्थियाँ देख आए थे। पर यहाँ तो वह लाखों वर्ष पुराना काल फिर लौट आया था। ऐसे वृहत्काय जीव थे जिनकी छाया के नीचे छोटी-बड़ी सभाएँ हो सकती हैं। मस्तोदन का बच्चा हाथी से छोटा न था। एक छः पाँव का पशु था, शेर जैसा मुँह पर नाक पर छोटा-सा सींग। उसके दोनों कंधों पर सिंह के केसर-जैसे लम्बे बाल थे। दूर से पंखों का भ्रम हो सकता था। ऐसा प्रतीत होता था कि इसको देख कर ही हमारे पुराणों में शरभ का वर्णन किया गया है।

जहाँ इतने और ऐसे जीव हों, वहाँ शान्ति कहाँ। दिन भर हत्या का बाजार गर्म रहता था। रात तो और भी भयानक होती थी। कहीं इधर गरज, कहीं उधर चिग्घाड़, कहीं किसी तीसरी ओर आर्त की चीख, सोना कठिन था। इन लोगों का जहाज जहाँ उतरा था वहाँ कुछ दूर तक पेड़ न थे, अन्तकारण्य के अनुभव ने इनको यह सिखाया था। इसलिए यह लोग इन पशुओं के विहार और आखेट-क्षेत्र के बाहर थे। फिर भी रक्षा की दृष्टि से जहाज के चारों ओर बिजली का हल्का सा जाल हर समय बिछा रहता था।

आज से कई लाख वर्ष पहिले की पृथिवी के अध्ययन की अटूट सामग्री बिखरी पड़ी थी। इन लोगों ने बहुत से फोटो लिये, कुछ खाल और अड्डे रख लिये। सबसे बड़ी चीज तो यह अपने साथ ले जा रहे थे वह कुत्ते का एक जोड़ा था। अद्वैत ने उसे गिद्ध से बचाया था। उसे कुत्ता इसलिए कहा जाता है कि कोई दूसरा उपयुक्त नाम समझ में नहीं आता।

मुखाकृति कुत्ते से कुछ-कुछ जरूर मिलती थी पर टाँगें छ थी और पूँछ दो। न जाने क्यो इस ग्रह पर कई पशुओ के छ टाँगें थी। वह इन लोगो से बहुत जल्दी हिल गया। इनका नाम विभीषण और सरमा रक्खा गया। यह नामकरण स्पष्ट ही पडित जी ने किया था। पूर्ण वयस्क होने पर इस जाति का कुत्ता भालू के बराबर होता है।

इस ग्रह का भविष्य क्या है, इस सम्बन्ध में इन लोगो में बहुधा तर्क-वितर्क होता रहता था। कोई बाहर से आकर यहाँ सभ्यता फैलायगा या यहाँ किसी ऐसे उन्नतिशील प्राणी का विकास होगा, यह नही कहा जा सकता था पर यह विश्वास नही होता था कि इतना उर्वर और रत्नगर्भ भूभाग सदा जगली जीवो की सम्पत्ति बना रहेगा।

इस ओर की पर्याप्त सैर करने के बाद यह लोग पर्वतमाला की दूसरी ओर उतरे। उधर भी जहाज उतारने के योग्य जगह मिल गयी। जगल उधर भी था, वही पशु-पक्षी भी थे परन्तु जगल भी झीना था, पशु भी कम थे।

पहाड की एक शाखा कुछ दूर तक चली गयी थी। उसमें सूखी चट्टानें अधिक थी, वृक्ष बहुत कम। सामने से उसमें गुफाओ के द्वार देख पडते थे। सम्भवत यह कभी ज्वालामुखी विस्फोट से बनें होगें। गुफाओ से कुछ दूर तक कोरी चट्टानें थी, जगल न था।

दूसरे दिन यह लोग उधर सैर करने के उद्देश्य से निकले परन्तु थोडी ही दूर गए थे कि घोर दुर्गन्ध आयी। जैंस बहुत सा सडा मास कहीं निकट में ही पडा हो। नाक दबाकर किसी प्रकार आग बढ़े। जहाँ जगल समाप्त होता था वहाँ बहुत दूर तक लम्बा गड्ढा था। निश्चय ही यह गड्ढा मनुष्य की कारीगरी था। उसमें वृक्षो की नुकीली खूटियाँ गडी हुई थी। उन पर सैकडो पशुओ के लोथड लटक रहे थ। बात स्पष्ट थी। गड्ढा

इसलिए खोदा गया था कि जगल के पशु चट्टान की ओर न बढ सकें। यदि कोई आगे आ ही जाय तो वह गड्ढे में गिर जाय और उसका शरीर लकडी की इन तीखी बरछियो से छिद जाय।

यह सूझ किसी पशु की नही हो सकती। या तो यहाँ मनुष्य या उसके समान ही कोई दूसरा बुद्धिशील प्राणी रहता होगा। परन्तु कहाँ ? स्वभावत. गुफाओ की ओर खयाल दौडा। ध्यान से देखने से विचार की पुष्टि हुई। भले ही उनको प्रकृति ने बनाया हो परन्तु उनके मुँह किसी औजार से छील-छालकर ठीक किये गये थे और उनमें द्वारो की जगह लकडी के पल्ले भिडे हुए थे।

यह लोग अजनबियो के साथ न जाने कैसा सलूक करते हो, इसलिए सावधान तो रहना ही चाहिए। यह लोग सतर्क होकर आगे बढे। पास जाते-जाते सौ-डेढ सौ व्यक्ति निकल आये। रग ताँबे जैसा, शरीर पुष्ट, हाथ और पाँव में छ-छ अँगुलियाँ, देह आगे से कुछ झुका हुआ था, इसलिए आजानुबाहु से लगते थे। सारा बदन नगा था पर कमर में पत्तियों का कौपीन-सा पडा था। गले और बाल फूलो से सँवारे गए थे। शरभ की भाँति इनके कन्धो पर भी बालो की पक्ति थी। प्राय सब के हाथो में धनुष-बाण था, कुछ भारी गदा या मुद्गर से सज्जित थे।

पहिले तो वह इनको देखकर सहमे, फिर तीर सँभाले। पडित ने अपनी तर्जनी उठाकर उनको जोर से डाँटा। भाषा तो वह क्या समझे होंगे पर स्वर और मुद्रा का अर्थ समझ गये। रुक गये। फिर पडित ने अपनी पिस्तौल सामने के एक छोटे पेड पर चलायी। नली में से आग निकली, पेड गिर गया। यह बिजली की पिस्तौल न थी, ऐसे अवसरो के लिए ही रक्खी गई थी। बस इतना पर्याप्त था। सब के सब इन लोगो के चरणो में गिर पडे।

जो प्रश्न इन लोगो के चित्त में इतने दिनो से खेल रहा था उसका

मुखाकृति कुत्ते से कुछ-कुछ जरूर मिलती थी पर टाँगें छ थी और पूँछ दो। न जाने क्यो इस ग्रह पर कई पशुओ के छ टाँगें थी। वह इन लोगो से बहुत जल्दी हिल गया। इनका नाम विभीषण और सरमा रक्खा गया। यह नामकरण स्पष्ट ही पडित जी ने किया था। पूर्ण वयस्क होने पर इस जाति का कुत्ता भालू के बराबर होता है।

इस ग्रह का भविष्य क्या है, इस सम्बन्ध में इन लोगो में बहुधा तर्क-वितर्क होता रहता था। कोई बाहर से आकर यहाँ सभ्यता फैलायेगा या यहाँ किसी ऐसे उन्नतिशील प्राणी का विकास होगा, यह नही कहा जा सकता था पर यह विश्वास नही होता था कि इतना उर्वर और रत्नगर्भ भूभाग सदा जगली जीवो की सम्पत्ति बना रहेगा।

इस ओर की पर्याप्त सैर करने के बाद यह लोग पर्वतमाला की दूसरी ओर उतरे। उधर भी जहाज उतारने के योग्य जगह मिल गयी। जगल उधर भी था, वही पशु-पक्षी भी थे परन्तु जगल भी झीना था, पशु भी कम थे।

पहाड की एक शाखा कुछ दूर तक चली गयी थी। उसमें सूखी चट्टानें अधिक थी, वृक्ष बहुत कम। सामने से उसमें गुफाओ के द्वार देख पडते थ। सम्भवत यह कभी ज्वालामुखी विस्फोट से बने होगे। गुफाओ से कुछ दूर तक कारी चट्टानें थी, जगल न था।

दूसरे दिन यह लोग उधर सैर करने के उद्देश्य से निकले परन्तु थोडी ही दूर गए थे कि घोर दुर्गन्ध आयी। जैसे बहुत सा सडा माग वहीं निकट में ही पडा हो। नाक दबाकर किसी प्रकार आगे बढे। जहाँ जगल समाप्त होता था वहाँ बहुत दूर तक लम्बा गड्ढा था। निश्चय ही यह गड्ढा मनुष्य की कारीगरी था। उसमें वृक्षो की नुकीली खूँटियाँ गडी हुई थीं। उन पर सैकडो पशुओं के लोथडे लटक रहे थ। बात स्पष्ट थी। गड्ढा

इसलिए खोदा गया था कि जगल के पशु चट्टान की ओर न बढ सकें। यदि कोई आगे आ ही जाय तो वह गड्ढे में गिर जाय और उसका शरीर लकडी की इन तीखी बरछियों से छिद जाय।

यह सूझ किसी पशु की नही हो सकती। या तो यहाँ मनुष्य या उसके समान ही कोई दूसरा बुद्धिशील प्राणी रहता होगा। परन्तु कहाँ ? स्वभावत गुफाओ की ओर खयाल दौडा। ध्यान से देखने से विचार की पुष्टि हुई। भले ही उनको प्रकृति ने बनाया हो परन्तु उनके मुँह किसी औजार से छील छालकर ठीक किये गये थे और उनमें द्वारो की जगह लकडी के पल्ले भिडे हुए थे।

यह लोग अजनबियो के साथ न जाने कैसा सलूक करते हो, इसलिए सावधान तो रहना ही चाहिए। यह लोग सतर्क होकर आगे बढे। पास जाते-जाते सौ-डेढ सौ व्यक्ति निकल आये। रग ताँबे जैसा, शरीर पुष्ट, हाथ और पाँव मे छ-छ अँगुलियाँ, देह आगे से कुछ झुका हुआ था, इसलिए आजानुबाहु से लगते थे। सारा बदन नगा था पर कमर में पत्तियो का कौपीन-सा पडा था। गले और बाल फूलो से सँवारे गए थे। शरभ की भाँति इनके कन्धो पर भी बालो की पक्ति थी। प्राय सब के हाथो में धनुष-बाण था, कुछ भारी गदा या मुद्गर से सज्जित थे।

पहिले तो वह इनको देखकर सहम, फिर तीर सँभाले। पडित ने अपनी तर्जनी उठाकर उनको जोर से डाँटा। भाषा तो वह क्या समझे होंगे पर स्वर और मुद्रा का अर्थ समझ गये। रुक गये। फिर पडित न अपनी पिस्तौल सामने क एक छोट पेड पर चलायी। नली में से आग निकली, पेड गिर गया। यह बिजली की पिस्तौल न थी, ऐस अवसरो के लिए ही रक्खी गई थी। बस इतना पर्य्याप्त था। सब के सब इन लोगो के चरणो में गिर पडे।

जो प्रश्न इन लोगो के चित्त में इतने दिनो से खेल रहा था उसका

उत्तर मिल गया। इस ग्रह के विजेता, भावी शासक, का जन्म हो गया था। यह जाति यहीं अन्यत्र से आयी या यहीं उत्पन्न हुई, यह नही कहा जा सकता पर यह निश्चय था कि भविष्य उसके हाथ में होगा। जो लोग आज गुफाओं में रहते हैं, फूल-पत्ती पहिनते हैं, वह पशु कोटि के ऊपर उठ गए हैं, संस्कृति का बीज उनमें वपन हो गया है, इसका एक दिन विस्तार होकर रहेगा। जिन लोगों ने लकड़ी के खूँटों और तीरों के बल पर भयानक पशुओं की बाढ़ रोकी है उनकी बाढ़ को रोकने में कोई समर्थ नही हो सकता। और यह प्रसन्नता की बात है कि दो-एक विशेषताओं के होते हुए भी वह मनुष्य है।

अब यहाँ कुछ और देखने को न था परन्तु पंडित ने आग्रह किया कि हमारा कर्त्तव्य है कि इन लोगों को सभ्यता के पथ पर आगे बढ़ने में थोड़ी सी सहायता दें। यह राय सब को पसन्द आयी। चट्टान में चकमक बहुत था। इनको आग जलाना सिखाया गया। आग पर भुन मांस को खाने में तो पहिले थोड़ी सी आनाकानी हुई परन्तु युद्ध और रक्षा में आग का किस प्रकार उपयोग हो सकता है, यह बात बहुत शीघ्र समझ में आ गयी। सूर्य्य की पूजा तो वह लोग पहिले भी करते थ। इन्होंने उनको हवन करना सिखलाया, दो-एक टूटे-फूटे मन्त्र बतला दिए। वह लोग अपने मुर्दों को खाते थ। अब उनका नर-मांस खाना बन्द हो गया और दाहदाह होने लगा।

लगभग एक महीने यह लोग वहाँ रहे। उन लोगों ने इनको बस जाने का निमन्त्रण दिया, गृहस्थी चलाने को पत्नियाँ भेंट करनी चाहीं, पर इन्होंने अपने को इन बातों से दूर रक्खा। भोजनादि भी उनके साथ नहीं करते थे ताकि उनके चित्त पर यह विश्वास जमा रहे कि यह स्वर्ग से देवगण उतरे हैं और हमारे हित के लिए हमको सदुपदेश देने आये हैं।

इनके जहाज के आकाश में उड जाने ने इस भावना को और भी पुष्ट कर दिया होगा। सम्भवत सहस्रो वर्ष बाद भी उन देवो की पूजा होती रहेगी जिन्होने स्वर्ग से उतरकर आग के रूप में सब उन्नति की कुजी इस जाति को सौंप दी। पडित ने इनको यह भी सिखाया कि तुम अपने को मनुष्य कहा करो। पता नही यह शिक्षा कब तक याद रहेगी और उस जाति के भविष्य के विद्वान् इस शब्द की क्या व्याख्या करेंगे।

पहिले ग्रह में एक जाति के जीवन की सध्या थी, यहाँ उसके विपरीत एक जाति के जीवन का प्रभात था वहाँ सभ्यता और सस्कृति का दम टूट रहा था और यहाँ उनका समुदय हो रहा था।

विश्व में ऐसा होता ही रहता है, यह बात अनुमान से सिद्ध होती है। पर इन लोगो को दोनो दृश्य अपनी आँखो देखने का सुयोग मिला। ऐसा अनुभव किसी अन्य को कदाचित् ही कभी हुआ होगा।

जाने के पहिले इस ग्रह का नाम प्रकाश रक्खा गया।

सामूहिक आत्मघात

अन्धकार में निराशा के जो बादल उमड आये थे प्रकाश में पहुँचकर वह स्वत छिन्न हो गए। इस ग्रह के नवमानव के भावी अभ्युदय की कल्पना ने इन लोगो के चित्त में कुतूहल के साथ-साथ विस्मय और आशा की गुदगुदी उत्पन्न कर दी। बिना कारण के कार्य्य नही होता, न अभाव से भाव होता है, न सत् असत् हो सकता है। अत जगत अनादि और निरवधि है, चेतना भी नित्य और विभु है। जो देख पडता है वह क्षणभगुर है• ग्रह, नक्षत्र, नीहार, सब नश्वर है, व्यक्ति, राष्ट्र, जाति, सभ्यता, सस्कृति सब का उदय और अस्त होता है, बुदबुद उठते है और विलीन हो जाते है, पर एक अथाह, अखड, सलिल है जो असीम से असीम तक फैला हुआ था, है, और रहेगा। मनुष्य अपनी अल्पज्ञता से सोचता है कि यदि हमारी वर्तमान सभ्यता का किसी प्रकार ह्रास हो गया तो विश्व मे आध्यात्मिक अन्धकार छा जायगा। यह उसका भ्रम है, झूठा गर्व है। जिस जगद्नियत्री शक्ति ने यह बिसात फैला रक्खी है वह प्रत्येक गोटी की खबर लेती है। एक को गिराती है, दूसरी को उठाती है। ज्ञान का दीपक बुझने नही पाता। गिरि, सागर मरुस्थली ही नही विशाल नभ प्रागण को पार करके उसका सन्देश पहुँचाया जाता है। बसने के योग्य भूपृष्ठ पर प्राणी आते है, प्राणियो के चित्त में ज्ञानाकुर का प्ररोह होता है। प्राणी अपने को स्वतन्त्र समझता है, परन्तु इस स्वतन्त्रता की आड म महामाया उसको कठपुतली की भाँति खलाती है। इनके चित्तो में आकाशभ्रमण की प्रबल इच्छा उठी थी पर यह अब विदित हुआ कि करोडो कोस की दूरी पर उदीयमान एक

नये मानव-समाज को उन्नति-पथ दिखालाने के लिए ही इन्हें काशी से यहाँ लाया गया था। सात्विक दान, दाता और अदाता दोनो का कल्याण करता है। इन्होंने अग्निदान करके प्रकाशास्य मानव के लिए उन्नति का द्वार खोल दिया। इनके भी ज्ञान और अनुभव की वृद्धि हुई और विचारो में गहराई आयी, पृथिवी के ज्ञान भडार का विस्तार हुआ।

अभिजित् लाइरा तारकपुंज में है। इस पुज का आकार प्राचीन यूनान के लायर बाजा जैसा है। यह लोग उधर ही जा रहे थे परन्तु कुछ घटनाओ ने इनके लक्ष्य को बदल दिया। अभिजित् से बायी ओर एक तारा है जो पृथिवी से धुंधला सा दीखता है। यो पास जाने पर हमारे सूर्य्य से कम नही है। उसके साथ कम से कम एक बडा ग्रह है। दूर से उसके पास बहुतसे छोटे-छोटे पदार्थ मॅडलाते देख पडे। कुछ और आगे बढने पर देख पडा कि यह सैकडो आकाशयान है। इनमें अधिकतर तो ग्रह को घेरे हुए थे परन्तु उनमें से कुछ दूर-दूर पहरेदारो की भाँति उड रहे थे। सैकडो आकाशयान ! पृथिवी पर तो अभी इनका एक यान बन पाया था। जिन लोगो के पास इतने आकाशयान हैं, वह उन्नति की किस चोटी पर होंगे। दो बराबर की सभ्यताओ का यह पहिला ही सामना था पर इस अवसर पर स्पष्ट ही पृथिवी का पल्ला हल्का पड रहा था।

यह लोग इसी उधेड-बुन म थे कि पहरेवाले एक जहाज ने इनको देख लिया और वेग से इनकी ओर बडा। इनकी साँप-छछूँदर सी दशा थी। यदि जहाज लौटाते हैं तो उसका सन्देह बडेगा, निश्चय ही पीछा होगा। सम्भव है उसके अस्त्र बहुत प्रबल हों और इनको खडे-खडे भस्म कर दे। यदि आगे बढते है तो भी कठिनाई है। यह एक, वह अनक। इनको घेर-कर कैद किया जा सकता था। जो कुछ हो, इन्होंने यह निश्चय कर लिया कि यदि जहाज पर सकट आया तो पहिले अपने निजी कागजो और नक्शो

को नष्ट कर दिया जाय ताकि शत्रु भी यह पता न लगा सके कि यह लोग कहाँ से आये है। यदि कोई शत्रु पृथिवी का पता पाकर यहाँ राज्य या उपनिवेश स्थापित करने पहुँच गया तो बहुत बुरा होगा।

पास आकर आगन्तुक ने प्रणाम सकेत किया। इन्होने भी उत्तर दिया पर एक की बात दूसरे की समझ में न आयी। तब इन्होने दृष्टिध्वनि यन्त्र लगाया। उनके पास भी ऐसा ही यन्त्र था। इससे बातचीत शुरू हुई। यद्यपि कठिनाइयाँ अब भी थी। जहाँ उभयपक्ष की जीवनानुभूतियाँ एक-सी होती है, वहाँ विचार भी एक-से उठते है, तदनुकूल चित्र भी एक-से बन पाते है, पर यहाँ वह बात न थी। दो ऐसी जातियों के प्रतिनिधि मिल रहे थे जिनके अनुभवक्षेत्र कही मिलते ही न थे। दोनो जहाजवाले पहिले तो एक दूसरे की सूरतों पर ही चौके। उनके लिए मनुष्य की आकृति नयी चीज थी, इन लोगो ने स्वप्न में भी ऐसे जीव न देखे थे जिनके चेहरे ऐसे हाथी जैसे हो जिनको सूँड की जगह थूथन हो और सिर पर दो अर्धचन्द्राकार सींग हों। उनके शरीर कधे से पाँव तक रेशमी कुर्ते से ढँके थे, कमर सुनहरी पेटी से कसी थी।

स्वभावत पहिले इनका परिचय और आने का उद्देश्य पूछा गया। उत्तर में इन्होंने इतना ही कहा कि हम बहुत दूर के रहनेवाले हैं। यहाँ तो ज्ञानसंचय करने और यदि सभव हो तो आकाश के इस प्रदेश के निवासियों से मैत्री और व्यापार सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से आए हैं। पहरेवालो ने सूचित किया कि आपलोग बुरे अवसर पर आये। यहाँ महायुद्ध छिड गया है, घटे दो घटे के भीतर लडाई आरम्भ होनेवाली है। आपका भला इसी में है कि न केवल तटस्थ रहें वरन् युद्धस्थल से दूर रहें। हमलोग भी दूर-दूर तक जाते है, कई ग्रहो पर हमारे उपनिवेश भी हैं। सम्भव है हमारी पुस्तको में आपके ग्रह और सूर्य्य का भी उल्लेख हो।

पर इस समय इन यानो के लिए अवकाश नही है। हम एक बार इन दुष्टो का मान मर्दन कर लें फिर आपसे बात करेंगे। आशा है आप हमारा आतिथ्य ग्रहण करके प्रसन होंगे। हम आपको अभी से अपने समाज की ओर से निमन्त्रण देते है।

इतना कहकर वह चला गया। यह न ज्ञात हो सका कि कौन लोग लड रहे हैं और क्यो। इतना और पता चल सका कि उनके कान नही होते और वह लोग सुन भी नहीं पाते। इसका कारण यह हो सकता है कि उनके ग्रह की हवा पतली हो और शब्द की लहरो का वहन न कर सकती हो। पर उनकी आंखे बहुत तेज थी। अँधेरे मे भी देख सकती थी। बस इतना ही जाना जा सका। फिर भी उनके यहां पुस्तकें थीं, विज्ञान था, किसी न किसी प्रकार का धर्म भी होगा, राज-व्यवस्था भी होगी। इस सारी जिज्ञासा का संवरण युद्ध की समाप्ति तक करना था। यह भी आशा रखनी थी कि जिस पक्ष से ईषत् परिचय हो गया है, उसकी विजय होगी।

थोडी देर में युद्ध आरम्भ हुआ। पृथिवी पर वायुयानों से काम लिया जाता है, भांति-भांति के परमाणु बम छूटते है, तोपें आग उगलती है। इसलिए हम विस्फोटो से परिचित है, समराग्नि के उच्छृंखल ताण्डव से अभ्यस्त है। परन्तु आकाशयानो के युद्ध तक जान में कल्पना के भी पर जलते हैं। लाखो कोस के युद्धस्थल में आग बरस रही थी। दोनो ओर से बेडे एक दूसरे का घेरने और ध्वस्त करने को बढते थे, फिर पीछे हटते थे। बिना बादल के बिजली कौंध रही थी। वस्तुत आकाश में पूर्णतया शून्य तो है नही रजकण सर्वत्र फैले हुए है। यह कण प्रदीप्त हो रहे थे, इतनी फुलझडियाँ छूट रही थीं कितना के परमाणु टूट रहे थे, नये परमाणु बन रहे थे, नयी गैसो की सृष्टि हो रही थी। जहाँ थोडी देर पहिले गर्वीला जहाज था, वहाँ या तो भस्म की एक चुटकी होती थी

या धातुओं का जला टूटा ढेर। यदि लड़ाई किसी ग्रह के भूतल से ऊपर होती तो जहाज़ों के अवशेष नीचे गिर जाते परन्तु खुले ख प्रदेश में गुरुत्व का अभाव है। यह लाखों वर्ष तक यों ही निश्चल पड़े रहेंगे। यदि उनके सवारों के शरीर बच गए होंगे तो रासायनिक क्रिया के अभाव में न वह गलेंगे, न सडेंगे, न सूखेंगे। यों ही वह भी अन्तरिक्ष में जहाँ के तहाँ पड़े रह जायेंगे। और यदि कोई जीवित व्यक्ति रह गया तो उसका क्या होगा? यदि उसके शरीर के भीतर की सारी क्रियाएँ चलती रहीं तो वह तो तत्काल ही मर जायगा क्योंकि वहाँ भोजन-पानी की तो बात ही क्या साँस लेने को हवा भी नहीं है। परन्तु कहीं यह न होता हो कि ऐसी अवस्था में शरीर की सारी क्रिया स्तब्ध हो जाती हो, प्राण अपने को खींचकर मूर्धा के किसी प्रदेश-विशेष में छिप जाता हो। तब तो वह व्यक्ति अमर-सा हो जायगा। यह अमरत्व उसके किसी काम न आयेगा पर उसका शरीर अधर में त्रिशंकु की भाँति लटकता रहेगा और जबतक किसी दूसरे पिंड के आकर्षण-क्षेत्र में न पहुँचेगा तब तक इसी समाहितप्राय अवस्था में रहेगा।

यह लोग युद्ध के उसी अंश को देख सकते थे जो आकाश में हो रहा था। ग्रह पर क्या बीत रही थी उसका कुछ अनुमान ही हो सकता था। उसका कलेवर तो आग की लपटों से आच्छादित हो रहा था। ऐसा युद्ध कब तक चल सकता है, शीघ्र ही एक न एक पक्ष हथियार डाल देगा, यह लोग ऐसा सोच ही रहे थे कि भयानक धड़ाका हुआ। आकाश में शब्द की गति नहीं होती इसलिए कुछ सुन तो पड़ा नहीं किन्तु ग्रह से उठकर, कोटि-कोटि अग्निजिह्वाएँ उसके चारों ओर के नभस्तल से लिपट गईं। बिजली का सागर प्रबल तरंगों से मथ गया। इनका जहाज बड़े वेग से पीछे हटा परन्तु फिर भी जैसे झंझावात छोटी नौका को हिलाता है उसी

प्रकार झकोले खाने लगा। बिजली के सारे यन्त्र अस्त-व्यस्त हो गए, ताप असह्य हो उठा। जहाँ एक ग्रह था वहाँ सहस्रों ज्योतिर्बिन्दु बिखर उठे। सूर्य प्रत्यक्ष रूप से हिल उठा। पीछे दूरबीन और गणना ने बताया कि वह अपने स्थान से सदा के लिए हट गया। आकाशयानों की राख भी न जाने कहाँ चली गयी।

धीरे धीरे वह खभाग जहाँ कभी वह अभागा ग्रह था ठंडा हुआ, अगारे बुझ गए परन्तु लाखों कोस तक तप्त बालुका के कणों जैसा प्रकाश अब भी छिटका हुआ है, उन्मत्त विद्युत् अब भी शान्त नहीं हुई है।

दुर्घटना का रहस्य समझना कठिन न था। आकाशयान परमाणु-शक्ति से चलते थे। यों तो कोई भी परमाणु काम दे सकता है परन्तु यूरेनियम के परमाणुओं के विघटन में सुविधा होती है, यह तत्व भूगर्भ में मिलता है, तारों और दूसरे ग्रहों में भी प्रचुर मात्रा में है। इसमें विशेषता यह है कि इसके परमाणु प्रकृत्या टूटते रहते हैं। महायुद्ध में जो अन्धाधुन्ध बम-वर्षा हुई उसके प्रहार से ग्रह के भीतर का यूरेनियम भंडार क्षुब्ध हो उठा। जो काम प्रकृति में धीरे धीरे होता है और प्रयोगशाला में नियन्त्रण के साथ किया जाता है, वह सहसा बड़े परिमाण पर हो उठा। यूरेनियम की खान में विस्फोट हुए, परमाणु टूट पड़े, क्षण भर में ग्रह के टुकड़े-टुकड़े हो गए। लड़नेवाले सदा के लिए सो गए, युद्ध स्वतः समाप्त हो गया। ग्रह के न रहने से सूर्य पर जो उसका आकर्षण था उसका अभाव हो गया, इसलिए वह अपने पुराने मार्ग से हट गया।

एक समुन्नत जाति की सामूहिक आत्महत्या का नाटक समाप्त हुआ। अन्वेषण और खोज की प्रवृत्ति बुद्धि का भूषण है, विज्ञान के सहारे प्राणी प्रकृति के गूढ़तम रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर लेता है, सृष्टि, पालन और संहार की शक्तियों को अपने अधिकार में लाता है परन्तु शक्ति का

स्वामी होना ही पर्य्याप्त नहीं है, उसका सदुपयोग भी होना चाहिए। यदि बुद्धि का परिष्कार न हुआ, यदि वह राग, द्वेष और अहंभाव के ऊपर न उठायी गयी, यदि अहं और त्व के पर्दे के पीछे उस अच्छेद्य, अद्वय तत्व के साथ तादात्म्य भाव उत्पन्न न हुआ जो नानात्व को एकत्व के सूत्र में बाँधे हुए है, तो शक्ति अभिशाप हो जायगी। बालक को तलवार देना घातक है।

आज मनुष्य भी इन शक्तियों से खेलने लगा है पर उसने भी बुद्धि का परिष्कार नहीं किया। भौतिकता के नशे में वह अध्यात्म तत्व पर ठोकर मारता है। क्या वह भी एक दिन प्रलय का आह्वान करनेवाला है ? क्या प्रकृति की अवहेलना करके पृथिवी अपने बच्चों के हाथों ही नष्ट होनेवाली है ?

यह प्रश्न स्वभाविक है । सभ्यता का एक प्रकार से ऐलवर्न में अन्त हुआ, दूसरा प्रकार यहाँ देख पड़ा। निश्चय ही व्यष्टि और समष्टि, सभ्यता और संस्कृति, चर और अचर के जन्म के जितने विभिन्न उपाय हैं उतने ही विभिन्न उपायों से प्रकृति उनका अन्त करती है। इसका कारण क्या है : कर्म्म, नियति, अदृष्ट या शक्तियों की अन्धी अकारण गति ?

जहाँ ऐसे वैराग्य लिए दार्शनिक विचार उठते थे वहाँ साथ-साथ विज्ञान-चर्चा की ओर भी चित्त का जाना स्वाभाविक था। विज्ञान के उच्च स्तर दर्शन की भूमिकाओं से टकराते हैं। कच्चा विज्ञान भले ही दर्शन की हँसी उड़ाता देख पड़े परन्तु गम्भीर विज्ञान दर्शन का पुष्टतम स्तम्भ है।

परमाणु और उसकी गुप्त शक्ति के विषय में ही बातचीत होती थी। वेदों में अणोरणीयान्, अणु से भी छोटा, प्रयोग आया है पर इस प्रसग म अणु केवल बहुत छोटे या छोटे से छोटे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कणाद ने परमाणु, परम अणु, को पारिभाषिक शब्द का रूप दिया। क्षिति, अप्, तेज और वायु के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते हैं। परमाणुओं

का परिमाण बराबर होता है और यह सब के सब अखड और अविभाज्य होते हैं। आधुनिक विज्ञान क्षिति आदि शब्दो का व्यवहार नही करता परन्तु उसने भी इसी परिभाषा को माना है। लगभग ९५ मौलिक पदार्थ अर्थात् तत्व हैं। इन्हीके विभिन्न मात्राओ में मिलने-जुलने से जगत की सारी वस्तुएँ बनी हैं। यह पृथिवी में, सूर्य मे, अन्य तारको में, सर्वत्र विद्यमान हैं। इनमें से प्रत्येक के सबसे छोटे टुकडे को परमाणु कहते हैं। परमाणु किसी रासायनिक क्रिया से काटा-छाँटा नही जा सकता परन्तु कुछ उपायों से उसका विभाजन हो सकता है। हाँ, विभाजन के बाद वह तत्व ही नही रह जाता, कोई दूसरा ही तत्व बन जाता है।

इतना तो सभी पढे-लिखे लोग जानते हैं परन्तु अद्वैतकुमार जी इस विषय के विशेषज्ञ थे, उन्होंने जो बातें समझायी उनसे परमाणु की शक्ति को समझने में अधिक सहायता मिली। प्रत्येक परमाणु देखने में एक सौर-मडल-सा लगता है। उसके केन्द्र मे "कुछ" होता है। इस "कुछ" से कुछ दूरी पर दूसरा "कुछ" घूमता रहता है। दोनो ही "कुछ" परिमाण मे बहुत छोटे होते हैं। बहुत छोटे के लिए अणु और परमाणु शब्द तो पहले ही बँट चुके हैं, अत इनको 'लव' कहना ठीक होगा। केन्द्रीय लवो में कुछ धन विद्युन्मय होते हैं, कुछ में विद्युत् का परिचय नहीं मिलता। इनको क्रमात् धन विद्युन्मय-लव और तटस्थ लव कह सकते हैं। परिधिवाले "कुछ" ऋण विद्युन्मय-लव होते हैं। हाइड्रोजन का परमाणु सबसे सरल होता है। उसमें केन्द्र में एक धनविद्युन्मय-लव और बाहर एक ऋण विद्युन्मय-लव होता है। दूसरे तत्वो के परमाणुओ में भीतरी और बाहरी लवो की सख्या अधिक होती है। यूरेनियम के केन्द्र में ९२ धन लव और १४२ तटस्थ, तथा बहिर्भाग में ९२ ऋण लव हैं। दूसरे तत्वो में लवो की सख्या इनके बीच में होती है। हाइड्रोजन परमाणु के लवो की सख्या में

वृद्धि से दूसरे तत्वो के परमाणु बने-से प्रतीत होते हैं। इस धारणा की पुष्टि इस बात से भी होती है कि दूसरे तत्वों के परमाणुओं के टूटने से हाइड्रोजन निकलता है। जिस तत्व में जितने ही अधिक लव होते है वह उतना ही अधिक अस्थिर होता है अर्थात् उसके केन्द्रस्थ धन लव निकल भागने के यत्न में रहते है। पारस्परिक खिंचाव के कारण जल्दी ऐसा नही हो पाता। हजारो वर्षों में कही अवसर आता है फिर भी चूँकि सभी धन लव है, अत एव दूसरे का निरन्तर विकर्षण करते रहते हैं और कभी-कभी एकाध लव अपने साथियो को छोडकर परमाणु के बाहर हो जाता है। इस प्रकार परमाणु का विघटन हो जाता है। विघटन के समय परमाणु से शक्ति का प्रबल निष्क्रमण होता है। यह तो प्रकृति की बात हुई, मनुष्य इस प्राकृतिक घटना का अनुकरण करता है। साइक्लोट्रन यन्त्र में यूरनियम के परमाणु के केन्द्र पर विद्युत् का प्रहार किया जाता है। फलस्वरूप केन्द्र की अवस्था क्षुब्ध हो उठती है, अस्थिरता तो पहिले से थी ही, लव तो निकलना चाहते ही थे, इस प्रहार से उनको सहायता मिल जाती है, कुछ लव परमाणु के बाहर हो जाते है, यूरनियम सीसा और दूसरे तत्वो में बदल जाता है और इस परिवर्तन में जो शक्ति निष्क्रान्त होती है उससे युद्धादि में काम लिया जाता है।

यह काम बहुत सरल नहीं है। इन लवों के लघु परिमाण का अनुमान इस बात से हो सकता है कि लव का व्यास ०००००००००००००४ इंच के बराबर होता है। एक और बहुत बडी कठिनाई है। विज्ञान का अनुभव है कि हम किसी भी वस्तु का स्थान या वेग ठीक-ठीक नहीं जान सकते। साधारण व्यवहार में हम वेग भी नापते हैं और स्थान का भी निश्चय करते हैं परन्तु विज्ञान की दृष्टि से यह दोनो ही निर्णय अयथार्थ हैं, इनके साथ "लगभग" जोड देना चाहिए। किसी वस्तु के स्थान या वेग को जानना

तभी सम्भव होगा जब हम उसको देखें या उस पर से टकराकर ज्योति की रश्मि किसी यन्त्र पर पड़े। परन्तु किसी वस्तु पर जब शक्ति का आघात होता है तो उसकी गति बदल जाती है। इससे स्थान और वेग में अन्तर पड़ जाता है। हमारे देखने मात्र से दृष्ट वस्तु में गतिभेद हो जाता है। बड़े परिमाण की वस्तुओं में इसका पता नहीं चलता परन्तु प्रभाव उन पर भी पड़ता है। इसलिए परमाणु के केन्द्र को निशाना बनाना बहुत सुगम नहीं होता। उससे छेड़छाड़ करने के प्रयत्न में ही उसकी गति बदल जाती है। निशाना चूक सकता है पर यदि केन्द्र पर चोट पहुँच गयी तो फिर बड़े जोर से विघटन होता है। उसमें से निकला हुआ लव प्रति सेकण्ड ६३ हजार कोस की गति से चलता है।

लव विद्युन्मय हो या तटस्थ, पर इस शब्द का अर्थ है टुकड़ा। परमाणु के भीतर जो लव है, उनको किसका टुकड़ा कहें? सिवाय विद्युत् के और तो कुछ मिलता नहीं। इसलिए उनको विद्युल्लव, बिजली के लव, कहना स्यात् ठीक हो। पर बिजली तो एक प्रकार की लहर, तरंग है। लहर किसमें है? तरंगी कौन है? शून्य में तरंगें उठ रही हैं? और फिर विद्वानों का यह भी खयाल है कि आकाश में ऋण विद्युत् के लवों का अथाह, अपार सागर है। उस सागर में कहीं-कहीं छिद्र, रिक्त स्थान हैं, वही हमको घन विद्युत् के लव जैसे प्रतीत होते हैं। शून्य में तरंगें और तरंगों में जगह जगह छिद्र।

बात आरम्भ हुई परमाणु के विघटन के भयावह परिणामों से और आ लगी दर्शन के किनारे। पंडित जी का कहना था कि यह सर्वथा स्वाभाविक है। सभी मौलिक विषयों का समन्वय दर्शन में होता है। विज्ञान का वेत्ता परमाणुओं का संघटन और विघटन अपनी आँखों देखता है। तत्त्व परिवर्तन जिसका रसायन के खोजी स्वप्न देखा करते हैं, उसके

लिए ध्रुव सत्य और व्यावहारिक प्रक्रिया है। पर वह शक्ति क्या है जो विद्युत् और प्रकाश के रूप में काम करती है? क्या उसका कोई सम्बन्ध उस शक्ति से भी है जो जीव रूप से प्राणियों में अभिव्यक्त होती है? वह आकाश क्या है जिसमें विद्युत् की तरंगें उठती हैं, जिसमें ऋण विद्युल्लव फैले हुए हैं, जिसमें कहीं-कहीं छिद्र है? शून्य में छिद्र का क्या अर्थ होगा?

अन्तर्द्धान

यह प्रसिद्ध है कि श्मशान में वैराग्य उत्पन्न हो उठता है। हमारे आकाशवासियों ने अभिजित् के समीप जो प्रलयस्वरूप दृश्य देखा था उसका प्रभाव चित्त पर से जल्दी मिटता न था। घूम-फिरकर गम्भीर विषयों पर ही गोष्ठियाँ होती थीं। अब इन लोगों ने आकाश में दूर बढ़ने का सकल्प छोड़ दिया था और सप्तर्षि की ओर यान को मोड़ दिया था। यह विचार था कि पहिले अरुन्धती या वशिष्ठ के पास रुकने का प्रयत्न किया जाय, फिर मरीचि पर यात्रा समाप्त की जाय।

परमाणुओं के बाद आकाश और दिक् का कई दिनों तक चर्चा रहा। अद्वैतकुमार ने बतलाया कि आज विज्ञान दिक् को स्थिर, अचल, तटस्थ, पदार्थ नहीं मानता। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बढ रहा है, बढ़ने के कारण उसके बिन्दु एक दूसरे से दूर हटते जाते हैं। उनका आपसी आकर्षण कम होता जा रहा है। गणना से विदित होता है कि विश्व का व्यास लगभग १ करोड कोस प्रतिवर्ष बढ रहा है। उसकी उपमा कुछ-कुछ फुटबाल से दी जा सकती है। ज्यों-ज्यों गेंद में हवा भरी जाती है वह फूलता है और उस पर के सभी बिन्दु एक दूसरे से दूर हटते प्रतीत होते हैं। आकाश में यह बात प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। तारों में अपनी-अपनी पृथक् गतियाँ तो हैं ही परन्तु दिक् के फैलाव से उत्पन्न एक दूसरे से बिलगाव की गति भी सब में है। ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती है उनके प्रकाश की यात्रा की लम्बाई बढ़ती है और उसका रंग लाल होता जाता है। उनका तापमान भी कम होता जाता है। एक दिन ऐसा आयेगा जब

विस्तार का अन्त होगा। फिर विपरीत शक्ति काम करेगी, गेंद की हवा निकलने जैसी अवस्था होगी। सकोच आरम्भ होगा, तारे पास आने लगेंगे, उनका रग बैंगनी होने लगेगा। आकर्षण में वृद्धि होगी, तापमान बढेगा, सकोच की चरमावस्था तक पहुँचते-पहुँचते बडे पिंड टूट जायेंगे। केवल परमाणु रह जायेंगे और परमाणु भी सम्भवतः हाइड्रोजन और कुछ अन्य तरल तत्वो के। पुराने दार्शनिक शब्दो में एकमात्र सलिल रह जायगा। इस प्रकार सकोच और विकास का नाटक निरन्तर होता रहता है।

दिक् किसी क्षण-विशेष में सर्वत्र एकरस भी नही है। विज्ञान कहता है कि वह चापाकृति है, धनुष की भाँति टेढा है पर तमाशा यह है कि प्रत्येक बिन्दु पर उसका टेढापन भिन्न है। 'टेढापन' और 'चापाकृति' का प्रयोग विज्ञान में लाक्षणिक अर्थ में होता है। जिस जगह यूक्लिड द्वारा उपज्ञात ज्यामिति के सिद्धान्त लागू न होते हो उसे चापाकृति कहते है। उदाहरण के लिए भूतल चापाकृति है। इस पर किन्ही तीन नगरो के बीच रेखाएँ खीचकर त्रिकोण बनाइये, उसके कोणो का जोड कभी दो ऋजु कोणो के बराबर अर्थात् १८० अश न होगा जो ज्यामिति के अनुसार त्रिकोण का अचूक लक्षण है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ दिक् टेढेपन को प्रभावित करता है। ऐसी कोई वस्तु नही जो गतिशील न हो, जो निरन्तर प्रकम्पित न हो, और गति, कम्पन, से दिक् की आकृति बदलती है। सच पूछा जाय तो हमको दिक् की अनुभूति गति के द्वारा ही होती है।

यह तो विज्ञान की बात हुई। पडित जी ने बतलाया कि दर्शन इसी बात को दूसरे प्रकार से समझाता है। सृष्टि के आरम्भ में जीव को अपने वास्तविक रूप को जानने की जो उत्कट जिज्ञासा थी वह पूरी न होती थी। इससे उसमें बेचैनी थी, चचलता थी। इस चचलता का अनुभव उसको क्षोभ, गति, के रूप में हुआ। इसी क्षोभ को शब्द कहते है। अन्तःकरण या

स्वभाव है हेतु ढूंढना। उसने इस गति, शब्द, के आश्रय की खोज की। कोई वास्तविक आश्रय कही बाहर तो था नही, अनुभूति के लिए जिस आधार की कल्पना की गयी, वही दिक्, आकाश है। यह काल्पनिक पदार्थ पहिला भौतिक पदार्थ हुआ। वस्तुत वह गति से अभिन्न है।

श्मशान से ज्यो-ज्यो दूर होते है, वैराग्य भी कम होता है। इन लोगो की भी यही अवस्था हुई। सुन्दर दृश्यो ने चित्त को खीचा, शास्त्रचिन्तन से विरति हुई। अहिमडल के घेरे में शिशुमार के सातो तारे जगमगा रहे थे। ध्रुव स्वत बहुत बडा तारा भले हो न हो परन्तु भारत मे उसके सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रचलित है, उन्होने उसको अधिक रोचक बना दिया था। दाहिनी ओर दूर से विश्वामित्र के दर्शन हो रहे थे। सामने वह सप्तर्षि-मडल था जिसको लक्ष्य करके यह लोग पृथिवी से चले थे। पृथिवी की धुरी का एक सिरा ध्रुव के प्राय सीध मे पडता है इसलिए दैनिक अक्षभ्रमण के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुव अचल है और सप्तर्षि आदि तारे उसकी प्रतिदिन परिक्रमा करते है। यह दृश्य पृथिवी पर से ही देख पडता है। इसमें कोई वास्तविकता तो है नही। पृथिवी से दूर निकल जाने पर ऐसी प्रतीति नही होती। परन्तु इस काल्पनिक परिक्रमा के अभाव म भी आकाश का यह प्रदेश बहुत सुन्दर है।

जहाज वशिष्ठ के पास पहुँचा। सौभाग्य से उसके पास कई ग्रह थे। सभी आकर्षक प्रतीत होते थे। आखिर एक पर यह लोग उतरे। एक नदी के किनारे सुरक्षित स्थान देखकर डेरा डाल दिया गया। भोजनादि से निवृत्त होकर सैर करने का विचार हुआ।

जिस जगह यह लोग उतरे थे वह चारो ओर से खुली हुई थी। वृक्ष थे पर कुछ दूर पर। चिडियाँ इधर-उधर उड रही थीं पर और कोई बडा जीव वहाँ देख नही पडता था। पर एक विचित्र बात थी। इन लोगो को

ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हमको कोई देख रहा है। देखनेवाला हमारे पास है, हमसे ऊँचा है, ऐसा तो लगता था पर किधर है, कहाँ है, यह कुछ ठीक समझ में नहीं आता था। एक और बात होती थी। वशिष्ठ चमक रहा था। कभी-कभी उसके प्रकाश में कुछ धुँधलापन-सा आ जाता था जैसे धुएँ जैसी कोई वस्तु बीच में आ गयी हो पर उस धुँधलेपन में से छनकर प्रकाश आ जाता था। यह चलते थे तब भी ऐसा बराबर लग रहा था कि इनकी गतिविधि को कोई बराबर देख रहा हो।

विचित्र दशा थी। यह लोग सहमे हुए थे। भय करना स्वाभाविक भी था पर सिवाय आगे बढने के कोई चारा भी नहीं था। इन्होने शस्त्र रख लिये थे पर यह खूब समझ रहे थे कि यदि सचमुच हमारे पीछे कोई लगा है तो उस अदृश्य व्यक्ति पर हमारे हथियार विफल होंगे। हाँ, डरकर बैठ रहने से भी कोई लाभ न होगा। सम्भव है हमारे आगे बढने से वह प्रकट हो। मुठभेड का परिणाम चाहे कुछ भी हो परन्तु यह चिन्ता तो दूर हो जायगी जिसे कल्पना और भीषण बनाए दे रही थी।

कुछ दूर चलने पर बस्ती के चिह्न मिले। चिह्न भी विचित्र थे। उनको पुरानी बस्ती के अवशेष नही कहते बनता था पर यह भी कहना कठिन था कि यह वर्तमान काल की बस्ती है। कई बडे मकान थे, बडे कमरे थे, कमरो में बैठने का सामान था। इन चीजो के बनाने में पृथिवी की ही भाँति लकडी और धातुओ से काम लिया गया था। परन्तु सर्वत्र किसी अव्यक्त कमी का अनुभव हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे सब कुछ अधूरा-सा है। और फिर कोई निवासी देख नहीं पडता था।

जिस नदी के पास इनका जहाज उतरा था वह नगर में से होकर बही थी। उसके किनारे एक बाग था, बाग में बँगला था, फौवारा था। वहाँ भी यह अधूरापन का भाव बना रहा। पेडो तक में एक प्रकार की अपूर्णता-

सी लगती थी। वहाँ एक और तमाशा हुआ। नदी के किनारे की गीली मिट्टी में पाँव के कुछ ताजे चिह्न थे। कई व्यक्ति, जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी थे, उधर से गये प्रतीत होते थे। पाँव सुडौल और मनुष्यों जैसे परन्तु बड़े थे। स्त्रियों के पद चिह्न पृथिवी के लबे से लबे मनुष्यों के पाँव से बड़े थे। इस चीज ने कुतूहल और भय को और भी बढा दिया।

यकायक इनकी दृष्टि एक सडक पर पड़ी। उधर से कुछ लोग इधर आते से लगे। बहुत लम्बे और बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, इन्हीं लोगों के पाँवों के निशान नदी के किनारे होंगे। परन्तु आकृति स्पष्ट न थी। पतले धुएँ जैसी गैस, जिसके भीतर से प्रकाश की किरणें छनकर आ जाती थीं। यह भी लगता था कि जैसे यह लोग सामने से आते तो देख पड़ते हैं पर चारों ओर व्याप्त से हैं। वह लोग इनसे कुछ दूर पर रुके और हाथ से कुछ सकेत किया पर यह लोग कुछ समझ न पाये। फिर वह स्यात् कुछ बोले, कम से कम इनको मधुर स्वर में उच्चरित कुछ शब्द सुन तो पड़े परन्तु वह भी जैसे वायु में चारों ओर फैले हों। यह फिर भी कुछ समझ न पाये। थोडी देर रुक कर वह मूर्तियाँ वहीं की वहीं अन्तर्हित हो गयीं। पहेली और विषम हो गयी।

बहुत तर्क वितर्क करने के बाद रहस्य कुछ-कुछ समझ में आया। सम्भवत यह लोग दिक् की चतुर्थ दिशा में विचरण करते हैं। हम लोग दिक् की तीन दिशाओं—दाहिने-बायें, आगे-पीछे और ऊपर-नीचे—को ही जानते हैं परन्तु गणित के अनुसार और भी दिशाएँ हो सकती हैं। यदि कोई प्राणी अपना सिर नहीं उठा सकता तो उसको ऊपर नीचे की दिशा का ज्ञान न होगा। उसके लिए दिक् में दो ही दिशाएँ होंगी। यदि उसके सामने एक पेंसिल खडी कर दी जाय तो वह उसके नीचे के भाग की परिक्रमा कर लेगा और पेंसिल को खोखला गोलामात्र मान लेगा। यदि पेंसिल

उठा ली जाय तो उसके लिए अदृश्य हो जायगी और यदि थोडी दूर पर फिर रख दी जाय तो वह यही कहेगा कि वह पहिले स्थान से अन्तर्द्धान हुई और किसी सिद्धिशक्ति के द्वारा दूसरी जगह फिर से प्रकट हुई। इसी प्रकार यदि कोई वस्तु चतुर्थ दिशा में चली जाती है तो हमारे लिये अदृश्य, अन्तर्हित, हो जाती है। तृतीय दिशा शेष दोनो दिशाओ से सर्वत्र सबद्ध है, उनके हर बिन्दु पर और हर बिन्दु के चारों ओर है। इसी प्रकार चतुर्थ दिशा हमारे चारो ओर है और उसमें जो चीज होती है, वह अपने चारो ओर प्रतीत होती है। ऐसा विदित होता है कि जिस चतुर्थ दिशा का ज्ञान मनुष्य को अभी केवल गणित के द्वारा हो रहा है उसमें यह लोग अभ्यासत रहते है। इसी लिए वस्ती अपूर्ण-सी लगती है, उसका वह अश जो चतुर्थ दिशा में है अदृश्य है।

आखिर वह अनुभव कैसा होता होगा? हमको अपने शरीरो तथा दूसरी वस्तुओं के उस अश का बिल्कुल ज्ञान नही है जो चतुर्थ दिशा में फैला हुआ है। हमारे मस्तिष्क की बनावट, हमारी इन्द्रियो का निर्माण और सर्वोपरि हमारी बुद्धि का विकास, ऐसा है कि हम तीन के अतिरिक्त किसी दिशा की कल्पना भी नहीं कर सकते। देवों और योगियो के अन्तर्द्धान होने की कथाओं को हँसकर टाल दिया करते थे, अब गणितज्ञो की बातो को सुनकर सिर झुका लेते हैं। परन्तु अनुभव में कुछ नहीं आता। यह कहते है कि योगी चित्त की वृत्तियो को अन्तर्मुख करके उस विस्तृत जगत् में प्रवेश कर सकता है पर यह भी सुनी-सुनाई बात है।

यहाँ ऐसे अनुभव का बडा सुयोग दीखता है। सभी चतुर्थदिक्चारी योगी है और हम पर कुछ कृपालु भी प्रतीत होते हैं। कैसे सम्पर्क स्थापित हो? कोई काम तो था नहीं, जहाज पर लौट आए। इसी उधेड़बुन में वह दिन गया पर कहीं से आशा की आभा न देख पड़ी।

दूसरे दिन फिर निरुद्देश्य निकले और पांव उसी बाग की ओर मुड पड़े। ऐसा लगा जैसे कोई शक्ति हठात् उधर ले जा रही है। नदी के किनारे बैठ गए। थोडी ही देर में सिर में चक्कर सा आने लगा, साँस रुकने लगी, कठ अवरुद्ध हो गया, सारा शरीर निश्चेष्ट और सज्ञाहीन हो गया। बडी घबराहट हुई। पृथिवी से इतनी दूर कहाँ आकर मृत्यु हुई। क्षण भर में यह विकलता दूर हुई, एक तरह का अपूर्व अनुभव होने लगा। अपना शरीर प्रत्यक्ष था, पर यह नही जान पडता था कि स्वय उसके भीतर हैं या बाहर, क्योंकि एक ओर तो उसके एक एक रोम की बनावट स्पष्ट हो रही थी, दूसरी ओर भीतर की रग-रग खुली पुस्तक की भाँति सामने थी। दूसरो के शरीरो का भी व्यवधान मिट गया था। जहाँ पहिले बैगनी किरणो के आगे का पता चलता ही न था वहाँ अब न जाने कितनी रश्मियो के आघात हो रहे थे। विद्युत् की लहरियाँ भी देह को प्रकम्पित कर रही थीं पर इसमे आश्चर्य की कोई बात न थी क्योकि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि परमाणुओ और अणुओ के सारे सघात टूट गए है, शरीर स्फुरणशील परमाणुओ का बना है। असख्य पिण्डो के कम्पन से उत्पन्न ध्वनि चारो ओर गूंज रही थी, और अपने शरीर तथा दूसरे पिण्डो के बीच जैसे स्पन्द प्रतिस्पन्द की जीवित डोरियाँ लहरा रही थीं।

एक जरा-सी सिहरन हुई, दृश्य बदला। मरुत्वान् की यात्रा के श्रीगणेश का समा सामने आया, फिर जैसे जल्दी-जल्दी पट परिवर्तन हो उस प्रकार भारत की स्वतन्त्रता की लडाई, द्वितीय महायुद्ध और रूस की क्रांति की झलक दिखायी दी। एक झटके के साथ दूसरी दुनिया सामने आयी, इनका जहाज पृथिवी पर लौटकर आया, उसका स्वागत, फिर कई ऐसे दृश्य जिनका परिचय इनको न तो प्रत्यक्ष हुआ था न किसी पुस्तक

में वर्णन मिला था। एक बात साफ थी, यह पिछले दृश्य सभी धुँधले और न्यूनाधिक अस्पष्ट थे।

होश आ गया। यह लोग सँभलकर उठ बैठे। इनकी घड़ियाँ कह रही थी कि इस जगह आये अभी पन्द्रह मिनट भी नही हुए थे।

इस अनुभव को समझना बहुत कठिन नहीं था। इस लोक के जो भी निवासी हो उन्होंने कृपा करके इनके चित्तों को आविष्ट करके थोडी देर के लिए चतुर्थ दिशा की अनुभूति के योग्य कर दिया। बाहर से खीचकर प्राण अन्तर्मुख हो गया, थोडा-सा अनुभव हो गया। जिसको साधारणत काल कहते है वह भी दिक् की ही एक दिशा है। इन लोगो को थोडी-सी सैर इस रेखा पर भी करा दी गयी। पहिले तो इन्हें पीछे, अतीत की ओर ले गये फिर पलटाकर आगे, भविष्यत् की ओर। भविष्यत् के चित्र स्वभावत अस्पष्ट होते। वह काल अभी अनागत है, प्राणियो के कृत्य, उनके विचार, उनकी भावनाएँ, उसका निर्माण कर रही है और तब तक करती जायँगी जब तक वह वर्तमान न बन जायगा।

जिन लोगो की कृपा से यह अपूर्व अनुभव हुआ था उनके साक्षात्कार की अधिक आशा नही थी। इन लोगों के बस की बात तो यह थी नहीं, सम्भवत वह लोग भी अधिक सम्पर्क के इच्छुक न थे या इसके आगे जाना उनकी सामर्थ्य के भी बाहर था। अत अब यहाँ ठहरना अनावश्यक था। उन लोगो को मूक धन्यवाद देकर मरुत्वान् आगे बढा।

तपोवन

अभिजित से वशिष्ठ तक की लम्बी यात्रा के बाद वशिष्ठ से मरीचि तक की यात्रा बहुत जल्द पूरी हो गयी। आकाश का यह प्रागण बडा सम्पन्न था। मरीचि के साथ कई ग्रह थे और इनमें से कइयो के साथ उपग्रह थे। यह लोग एक ग्रह पर जो प्राय पृथिवी के ही बराबर था उतरे। उसके नैश आकाश को दो उपग्रह सुशोभित करते थे जिनमे एक का रग रक्तिम था। यहाँ भी यह लोग एक अच्छी सुरक्षित जगह देख-कर उतरे। पीछे पहाड था, जिसकी चट्टानें सगमर्मर की थी उसमे से होकर नदी निकली थी। इस दृश्य को देखते ही इन लोगो को जबल्पुर के सगमर्मर के पहाडो की याद आ गयी। उस स्मृति से प्रभावित होकर इन लोगो ने उस पहाड का विन्ध्य और उस नदी का नर्मदा नाम रख दिया।

पहाड से लगी उपत्यका थी। फलो से लदे वृक्ष, भाँति-भाँति के फूल, पशु-पक्षी सब ने मिलकर स्थान को बडा रमणीक बना दिया था। एकदम समानता तो न थी, फिर भी इनमें से बहुतो को पार्थिव नामो से पुकारा जा सकता था। सुगन्ध से लदा शीतल समीर, लताओ से वेष्टित पेडो की झूमती डालियाँ, कलियो का चटकना, मकरन्द के लोभी परागरजित भ्रमरो का गूंजना, पक्षियो का कलगान—ऐसा प्रतीत होता था कि रतिनायक के सखा वसन्त की सेना ने यहीं डेरा डाल दिया है। यह लोग ग्रह के उत्तरार्द्ध में थे। उसकी भूमध्यरेखा का प्रदेश सहस्रो कोस तक हिमाच्छादित था परतु उत्तर, और अनुमानत दक्षिण की ओर चिरवसन्त का राज्य था। कभी पृथ्वी पर भी ऐसा रह चुका है।

सारा वातावरण मादक था। दो-एक दिन तो उसका रस लेने में गये। फिर कुछ और देख-भाल करने की ओर विचार गया। थोडा ध्यान से देखने से इनको यह प्रतीत होने लगा कि इस जगह भी किसी की बुद्धि ने काम किया है। कृत्रिम कुछ नहीं था। ऋतु प्रकृति की देन था, वृक्ष, लता, ओषधि, पुष्प, पशु, पक्षी, सभी प्राकृतिक थे, हवा प्रकृति का प्रसाद थी, फिर भी ऐसा लगता था कि किसी ने प्रकृति से सक्रिय सहयोग करके उसके कामो में चार चाँद लगाये है। किस फूल के रग के साथ किसका रग खिलता है, किसकी गध किसको दबा देती है, ऐसी बातो का लिहाज प्रकृति कम ही करती है परन्तु यहाँ इन बातो की ओर स्पष्ट ही ध्यान दिया गया था। जो सुन्दर था वह और सुन्दर बन गया था, सोने में सुगन्ध डाल दी गयी थी।

वशिष्ठ के पास जो अनुभव हुआ था उसके बाद यह लोग इस जगह भी किसी प्रकार के बुद्धिशील प्राणियो के अस्तित्व के लिए तैयार होकर आए थे। कुछ-कुछ ऐसी भी आशा होती थी कि वह लोग इनको क्षति न पहुँचायेंगे। फिर भी क्या ठिकाना? जब तक साक्षात्कार न हो तब तक क्या कहा जा सकता था?

साक्षात्कार के कोई लक्षण न थे। छोटी-बडी नदियाँ मिली, प्रपात मिले, उनके तट पर एक-से-एक सुन्दर वन और प्राकृतिक वाटिकाएँ मिली। सर्वत्र प्रकृति का वैभव छलक रहा था और सर्वत्र उसके सहयोग से काम लेनेवाली किसी बुद्धि का परिचय मिल रहा था। कभी-कभी इन लोगो को ऐसा लगा कि कोई हमारे पास है। एकाध बार तो जैसे कोई प्रबल प्रेरणा करके इनको ऐसे सुन्दर दृश्यो की ओर ले गया जिनकी यह दूर से उपेक्षा करनेवाले थे। एक बार अद्वैतकुमार का पाँव एक चट्टान पर फिसला। जरा-सी देर में सैकडो फुट नीचे गिरकर हड्डी, पसली चकनाचूर हो गयी

होती परन्तु ऐसा जान पडा जैसे किसी ने हाथ पकड़कर पीछे खीच लिया। यह बातें स्वतः तो अच्छी थी, कुतूहल और आशा को बढाती थी परन्तु साक्षात्कार की ओर एक भी पग न बढा। किसी प्रकार की बस्ती का वहाँ कोई चिह्न नही था, न स्पष्ट या अस्फुट कोई ऐसा शब्द सुन पडता था जिसे किसी भाषा का अंग माना जा सके। चार दिन तक इधर-उधर भटकने के बाद इन लोगो ने यह समझ लिया कि अपने प्रयास से यहाँवालो का सम्पर्क कदापि प्राप्त न होगा।

पाँचवें दिन इनकी अभिलाषा पूरी हुई और वह भी ऐसे ढंग से जिसका अनुमान न था। पृथिवी पर भी परचित्तप्रवेश की ओर लोगो का ध्यान जा रहा है। कुछ लोग दूसरो के मन की बात जान लेने की विशेष योग्यता रखते हैं। यह कुछ तो सहज गुण है, कुछ अभ्यास से बढाया जा सकता है। दूसरे के चित्त को प्रभावित करने, उसमें विशेष प्रकार के विचारो को उत्पन्न करने की कला का भी अध्ययन हो रहा है। मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओ में इससे बहुत काम लिया जाता है और अब तो रोगो के उपचार में भी इसके महत्व को माना जाने लगा है। चिकित्सा शास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी को इसकी पद्धति से थोडी जानकारी होनी चाहिए। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि एक दिन परचित्तज्ञान परदेहज्ञान के समान ही सरल हो जायगा। संभव है ऐसा हो परन्तु अभी तो पृथिवी पर इसका श्रीगणेश मात्र हो रहा है।

ऐसा विदित हुआ कि इस द्वीप में यह विद्या पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है। यहाँ के निवासी स्यात् वाणी के बिना ही एक दूसरे से बात करते होगे, सम्भवतः इसी लिए परस्पर अदर्शन से कोई दिक्कत नही होती।

यह लोग निराश होकर बैठे थे कि इनके चित्त में ऐसे वाक्यो का उदय होने लगा जिनका स्रोत कोई यहाँ का निवासी ही हो सकता था। वाक्य

हिन्दी के ये पर कहीं-कहीं बीच-बीच में क्लिष्ट संस्कृत, वह भी वैदिक शैली, की आ जाती थी। इनके मन में जो शंकाएँ उठती थीं उनका उत्तर आपसे आप मिल जाता था। प्रेरणा देनेवाला कहाँ था, यह नहीं कहा जा सकता था परन्तु उस समय इनके चारों ओर शान्त वातावरण छा गया था।

इस ग्रह के निवासी इसे तपोवन कहते हैं। मरीचि के ग्रहों में और भी कई इसी प्रकार के हैं। तपोवन में वह लोग ही जन्म लेते हैं जो पूर्व-जन्म में उत्कृष्ट योगी रह चुके होते हैं। यहाँ आकर तपश्चर्या पूरी करके समाधि की ऊँची भूमियों में प्रवेश किया जाता है और कैवल्य की अपरोक्ष अनुभूति होती है। ऐसे व्यक्ति बहुत से ग्रहों पर पाए जाते हैं। यहाँ भारत से आए हुए योगियों के सिवाय दूसरे पिंडों के भी योगी हैं। इनका निवास सदैव दिक् की तीन दिशाओं के बाहर होता है। अतः इनका लोक साधारण प्राणियों के लिए सदा अदृश्य है।

यहाँ पर एक शंका यह उठती थी कि और लोग तो इनको नहीं देख सकते परन्तु यह कैसे देखते-सुनते हैं और इनके लिए स्वयं दृश्य बनना सम्भव है या नहीं। इसका उत्तर ऐसा मिला जो थोड़ा सा विचार करने से स्वयं भी सोचा जा सकता था। इन्द्रियाँ अन्तःकरण की ज्ञानप्रापक शक्तियाँ हैं, उनकी गति भौतिक जगत मात्र में है। उसको दिक् की तीन दिशाएँ नहीं बाँधतीं। अतः इन लोगों के लिए इन्द्रियों के सभी विषय गोचर हैं। हाँ, स्थूल पदार्थों को उनके शरीर आत्मसात् नहीं कर सकते। इसी लिए लोगों का यह विश्वास है कि देव और दैत्य केवल गन्ध लेते हैं, खाते-पीते नहीं। स्थूल भौतिक कण वायुमंडल में चारों ओर फैले हुए हैं। इनके ही पिंडीभूत होने से प्राणियों के शरीर बनते हैं। साधारण प्राकृतिक नियमों के अनुसार प्रत्येक जीव अपने काम के कणों का संग्रह करता है, परन्तु विशेष अवस्थाओं में तीव्र संकल्प के द्वारा भी उनका समुच्चय बनाया

जा सकता है। पश्चिम में स्पिरिचुअलिज्म के सम्बन्ध मे जो प्रयोग हुए हैं उनसे इस बात की पुष्टि होती है। मरे हुए व्यक्ति, पारिभाषिक शब्दो में प्रेत, अपना भौतिकीकरण इसी प्रकार करते हैं। तपोवन के निवासी भी जब उचित समझते हैं तो इस युक्ति से भौतिक, अर्थात् दृश्य, शरीर धारण कर लेते हैं। सकट से बचाने के लिए, जिज्ञासु को ज्ञानोपदेश देने के लिए, विज्ञान की शोध करनेवाले को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए, यह लोग विचारजगत को तो प्रेरित करते हैं ही परन्तु नाना स्थानो में नाना रूपो में दृश्य शरीरो में भी प्रकट होते हैं पर इनको कोई पहिचान नही पाता। सभी भाषाएँ कुछ मूल स्वरो से बनी हैं। प्रत्येक स्वर से उठी हुई तरग मस्तिष्क के प्रदेश विशेष को झकृत करती है और चित्त में भाव विशेष को जगाती है। जो इन स्वरो को पहिचानता है उसके लिए सगीत और वाणी का विशाल जगत हथेली के फल के समान है। वह सभी भाषाएँ समझ और बोल सकता है।

इनके शरीर दिक् की तीन दिशाओ के परे तो स्थित हैं ही, उनकी बनावट सूक्ष्म कणो से, विद्युल्लवो से थी। ऐसे ही शरीरो को तैजस कहते हैं। प्रकाश की किरणो के लिए ऐसा देह पारदर्शी होता है, किरणो को विद्युल्लव रोकते नही, इसलिए न तो यह देह देख पडता है न इसकी छाया पडती है। इसका स्वरूप भी बहुत दिनो तक नहीं बदलता।

यह अन्तिम बात इन लोगो की समझ में न आयी। आखिर शरीर वृद्ध तो होता होगा, स्थूल न होने के कारण बाल पकने जैसा कोई परिवर्तन भले ही न देख पडे परन्तु किसी न किसी प्रकार तो जीर्णता आती ही होगी।

जगत मे जो कुछ भी है वह परिणामी है, बदलता है। कोई भी शरीर हो, क्रमश बदलेगा, उसमें नये कण क्रम मिलेंगे, उसमें से पुराने कण

अधिक निकलेंगे। यही बुढापा है। ऐसा वार्द्धक्य इन शरीरो को भी पकडता है परन्तु बहुत धीरे। कारण यह है कि यह विद्युल्ल्वो के बने हैं। *विद्युल्ल्व प्रचड वेग से निरन्तर गतिशील रहते है। गतिमान वस्तुओं में* परिवर्तन देर से होता है। इनके प्रेरक ने बतलाया कि तुम लोग अपने जहाज में बडे वेग से घूम रहे हो। यदि ५० वर्ष के बाद लौटा तो तुम प्राय वैसे के वैसे रहोगे परन्तु तुम्हारे सामने के बच्चे बुड्ढे हो चले होंगे। साधारण वेगो का प्रभाव इतना कम होता है कि पकड में नहीं आता। पता तब चलता है जब प्रकाश के वेग, ९३,००० कोस प्रति सेकेंड, से थोडा-बहुत मिलता वेग हो। इस गति का दूसरा प्रभाव यह होता है कि *द्रव्यमान बढ जाता है। यहाँ के शरीरा में यह भी गुण है।* जहाज पर द्रव्यमान वृद्धि का पता यो नही चलता कि सभी वस्तुओ में समान अनुपात से बढती हुई हैं परन्तु सामान्य बोलचाल में इनके दौडते जहाज पर की सुई पृथिवी पर के हाथी के बराबर है।

पर यदि एक ही समय में पैदा हुए दो व्यक्तियो में एक बूढा और दूसरा युवा हो सकता है तब तो बडी अनवस्था हो जायगी। हम काल-सूचक शब्दो का बडे निश्चय के साथ व्यवहार करते हैं पर इस निश्चय *का तो आधार ही खिसक गया, फिर काल का अर्थ क्या होगा?*

इसका समाधान इनके गुप्त गुरु ने जिन शब्दो में किया उन्होंने दुरूहता में आइस्टाईन की रचनाओ को भी पीछे डाल दिया।

अद्वैतकुमार गणित के अच्छे ज्ञाता थे पर इस प्रवचन का पानी उनके भी सिर के ऊपर से निकल गया। जो कुछ समझ में आया उसका साराश यह था

लोग निश्चयात्मक शब्दो का प्रयोग करते है, यह इस बात को सिद्ध नही करता कि निश्चय के लिए आधार हैं। निश्चयमयी भाषा तो दिक्

के सम्बन्ध में भी बोली जाती है। लोग दृढ़तापूर्वक बतलाते है कि अमुक वस्तु इस समय अमुक जगह है। परन्तु यह तो तुम जानते हो कि ऐसा कहना ठीक नही है। मशाल को तेजी के साथ घुमाओ तो ज्योतिश्चक्र बन जाता है, यह बताना कठिन हो जाता है कि जलता सिरा ठीक कहाँ है। यह तो एक प्रकार का भ्रान्तदर्शन है परन्तु यदि किसी वस्तु को दर्शन या निरीक्षण का विषय बनाया जाय तो वह फैल-सी जाती है, फिर इतना ही कहा जा सकता है कि रुपए में बारह आना अमुक जगह है, चार आना कही अन्यत्र। दूसरे शब्दो में इतना ही कह सकते है कि वस्तु प्राय अमुक स्थान पर है और उसकी गति प्राय अमुक प्रकार और मात्रा की है।

प्रश्न—तो क्या जिस समय कोई नही देखता, उस समय स्थान और गति ठीक रहती है? यदि ऐसा हो तो इस अनिरीक्षित अवस्था को वस्तु की सहज या प्राकृतिक अवस्था माना जा सकता है।

उत्तर—यह प्रश्न नासमझी का द्योतक है। जिस समय कोई साक्षी नही है उस समय भी वस्तु की सत्ता होती है इसका विज्ञान के पास कोई प्रमाण नही है। वस्तुओं के अतीत और भविष्यत् के सम्बन्ध में जितनी बाते कही जाती है, जितने सिद्धान्त स्थापित किए जाते है वह सब वर्तमान की किसी अनुभूति को समझने के लिए कल्पित साधन है। इस समय मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई अनुभव हुआ। चित्त पूछता है क्यो? जो कारण समझ में आता है, उसका कारण और फिर कारण का कारण, इस प्रकार विज्ञान का विस्तार होता है। सबका आधार है कोई वर्तमान अनुभूति। अनुभव चित्त की वृत्ति है, चित्त में होता है। बस चित्त की वृत्ति विशेष के आगे और जो कुछ है वह कल्पना है। सारा जगत् मनोराज्य है। यदि साक्षी, चेता ही न होगा तो अनुभव किसको होगा?

प्रश्न—पर यह तो विज्ञान नहीं दर्शन है ?

उत्तर—यह किसने कहा कि विज्ञान को दर्शन से दूर रहना चाहिए ? अस्तु, काल के निश्चयात्मक निर्णय दिक् से भी कम विश्वसनीय हैं।

काल वस्तुतः आभ्यन्तर तत्व है। जीव को अपने अनुभवों में जिस परम्परा की प्रतीति होती है वह काल है। यह वह डोर है जिस पर सारी अनुभूतियाँ मणियों की भाँति पिरोयी रहती हैं। तुम्हारे पहिले प्रश्न का उत्तर भी इससे मिलता है। जहाँ साक्षी न होगा, वहाँ अनुभव न होंगे, अथच काल न होगा। जो वस्तु साक्षीभूत नहीं है वह काल के बाहर होगी परन्तु विज्ञान का क्षेत्र वहीं तक है जहाँ तक दिक् और काल है। इसके बाहर यदि किसी प्रकार की सत्ता है तो विज्ञान उसे नहीं जानता। आभ्यन्तर होने के कारण सबका काल एक-सा नहीं होता। अपने-अपने चित्त की अवस्था के साथ-साथ किसी के लिए काल उड़ता है, किसी के लिए चींटी की चाल रेंगता है।

प्रश्न—परन्तु कोई बाह्यकाल भी तो होता होगा ? आखिर लोगों के पास घड़ियाँ क्यों होती हैं। एक ही साथ एक ही दृश्य को सैकड़ों, वरन् लाखों, कोसों से लोग देख सकते हैं, भूत, भविष्य, वर्तमान-जैसे शब्दों का व्यवहार करते हैं, इसका कुछ तो निश्चित अर्थ है ही।

उत्तर—थोड़ी दूरियों के लिए इन शब्दों का अर्थ लग जाता है परन्तु जहाँ लाखों और करोड़ों योजन की बात हो वहाँ यह शब्द भ्रामक हैं। तुमने एक तारे को नष्ट होते देखा था। तुम्हारे लिए वह घटना अतीत में है। वहाँ से चली प्रकाश की किरणें कहीं आज पहुँच रही होंगी। उन जगहों के लिए वह वर्तमान में है और जहाँ प्रकाश की किरणें आज के बाद पहुँचेंगी वहाँ के लिए अनागत है। एक का वर्तमान दूसरे का भूत और तीसरे का भविष्यत् है। अतीत, वर्तमान और

अनागत का सम्बन्ध दृश्य से नहीं, प्रत्युत द्रष्टा से है। एक ही दृश्य का एक ही साथ देखा जाना भी कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। प्रकाश का वेग प्रति सेकेंड ९३,००० कोस (१,८६,००० मील) है। किसी ग्रह पर एक सिरे से दूसरे तक जाने-आने में प्रकाश को इतना कम समय लगता है कि साधारण घडियो से तो उसे नापा भी नहीं जा सकता। परन्तु यदि दो व्यक्ति अपनी घडिया को मिलाकर, दो तारों के बीच में कही बैठकर किसी घटना को देखेंगे तो वह उसे कभी एक साथ नहीं देख सकते। उनके पास तक पहुँचने में प्रकाश को भिन्न भिन्न समय लगेंगे। उसको देखने का समय उनकी घडिया में पृथक्-पृथक् होगा। एक की घडी से दूसरे की घडी सुस्त या तेज पड जायगी। जिसने जिस समय देखा उसके लिए वही ठीक है। यह कहने से भी काम नहीं चलता कि दोनो ग्रहो से ठीक बीच का बिन्दु चुना जायगा, तब तो प्रकाश को दोनो ओर समान यात्रा करनी होगी। यदि तारो के द्रव्यमानो में भेद है तो वह अपने पडोस के दिक् को भिन्न मात्राओं में चापावृत करेंगे। अत प्रकाश की किरणों की यात्रा फिर भी विषम हो जायगी और घडियाँ न मिलेंगी। न तो दिक् में कोई निश्चितता है, न काल में। जब किसी घटना का वर्णन करने में स्थान और समय—कहाँ और कब—का निर्देश करना हो तो यह बता देना चाहिए कि निरीक्षण किस जगह से हो रहा है।

प्रश्न—काल की सापेक्षता तो प्रकाश रश्मियो की गति पर निर्भर है परन्तु स्थान में फर्क कैसे पड सकता है?

उत्तर—यह तो बहुत ही सरल और अनुभवगत बात है। तुम किसी सवारी पर जा रहे हो। उस यान की दृष्टि से तुम्हारा स्थान अचल है पर बाहर से देखनेवाले के लिए प्रतिक्षण बदलता रहता है। तुम्हारे

सूर्य्य से देखने से कुछ और ही स्थान होगा और सौरमण्डल के बाहर से बिल्कुल दूसरा।

इस प्रकार की और बहुत-सी बातचीत हुई। जगत् का रहस्य कुछ सुलझा और उसकी पहेली की जटिलता कुछ पहिले से और कठिन हो गयी। कहाँ विज्ञान समाप्त होकर दर्शन आरम्भ होता है, कहाँ दर्शन और अध्यात्म का अंचल मिलता है, यह कहना कठिन था। शायद एक को दूसरे से पृथक् करने का प्रयत्न ही गलत है।

अस्तु, अब इस जगह अधिक रुकने से कोई लाभ न था। इन लोगों ने तपोवन के निवासियों को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक विदा माँगी और उनसे आशीर्वाद लेकर यान खोल दिया।

रकासों का लोक

इतनी यात्रा के बाद अब कहीं और जाने की इच्छा बाकी नहीं थी। जी चाहता था कि घर लौटें और पृथिवीवासियों के पास तक अपना उपार्जित किया हुआ ज्ञान पहुँचाएँ। इसलिए जहाज पृथिवी की ओर मोड़ा गया। सप्तर्षिमण्डल से बाहर निकलते समय इनकी दाहिनी ओर पुलस्त्य पड़ा। तारा बड़ा है, उसके पास कई ग्रह हैं। कोई विशेष कारण नहीं था, फिर भी जी न माना, एक ग्रह पर उतर पड़े। उसके साथ अपने चन्द्रमा के बराबर उपग्रह भी था।

ग्रह बड़ा था, पर बहुत ठंडा। जल था पर कम और हवा भी पृथिवी से कुछ पतली थी। जहाज से उतरकर यह लोग यों ही थोड़ी दूर टहलने निकले। कुछ ही दूर गये थे कि शोर सुन पड़ा और पास के जंगल में से निकलकर बीस-पचीस व्यक्तियों ने इन्हें घेर लिया। उनके शरीर मनुष्य जैसे ही थे, लम्बा डील-डौल, चौड़े वक्ष। सब-के-सब नंगे थे और देह को रँगे हुए थे। सब के हाथों में पेड़ों की डालियाँ थीं परन्तु कुछ के पास लोहे के डंडे भी थे। जंगलियों के पास लौहदण्ड का होना आश्चर्यजनक था। यह लोग अपने बिजली के शस्त्र साथ लाना भूल गये थे, यह दिक्कत थी। भाषा समझने का तो कोई प्रश्न ही न था, संकेत से यह समझाना चाहा कि हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं, परन्तु जंगलियों पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह थोड़ी देर ठिठके फिर इनकी ओर बढ़े। इन लोगों को तो यही लगा कि आज यात्रा का अन्त हुआ। सारा परिश्रम व्यर्थ गया। जंगली सतर्क होकर बढ़ रहे थे क्योंकि उनको इस बात का विश्वास नहीं होता था कि

यह लोग निहत्थे होंगे। परन्तु सकट जैसे आया था वैसे ही टल गया। किसी ने गोली चलायी। चार-पाँच जगली गिरे, शेष चिल्लाकर भाग गये।

जिधर से बन्दूक चली थी उधर से सात-आठ व्यक्ति आ रहे थे। सूरत-शकल में तो वह भी इन जगली लोगो से मिलते थे, वैसी ही आकृति, वैसे ही सुन्दर शरीर। उन लोगो के देह पर लुङ्गी और कुर्ते से मिलता-जुलता रेशमी वस्त्र था और हाथ में बन्दूकें। स्त्रियो और पुरुषो का पहिनावा एक-सा था। यह स्पष्ट था कि इस अवसर पर दो करोड कोस दूर लोको के मनुष्यो, दो विभिन्न सभ्यताओ और सस्कृतियो, का सम्मिलन हो रहा था। दोनो ओर उत्सुकता थी, परन्तु सयत। पार्थिव मनुष्य कृतज्ञता के भार से नत थे, एतल्लोकीय मनुष्य यह भाव प्रकट नही होने देना चाहते थे कि हमने कोई उपकार किया है। भाषा न जानने की कठिनाई तो थी ही पर वह बाधक न हो सकी। इन लोगो ने अपना "दृष्टिध्वनि" यन्त्र निकाला। उन लोगो के पास भी इससे मिलता-जुलता यन्त्र था, इसलिए बातचीत जल्दी ही आरम्भ हुई।

पहले तो पृथिवीवालो ने अपना परिचय दिया। सूर्य्य और सौरमडल का चर्चा किया, पृथिवीवालो की दृष्टि में सप्तर्षिमडल का जो आदरणीय स्थान है वह बतलाया। फिर सक्षेप में पृथिवी के इतिहास का दिग्दर्शन करके अपनी यात्रा का वर्णन किया और दस्युओं से रक्षा करने के लिए इन लोगो को धन्यवाद दिया। पृथिवी का वर्णन करते समय इस बात का भी जिक्र आया कि यहाँ भी बन्दूक जैसे शस्त्र होते है और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया कि इस लोक और पृथिवी मे इतनी समता कैसे है।

इस जाति का इतिहास भी बडा रोचक था। इनकी पुरानी गाथाओं से ऐसा पता चलता है कि सृष्टि के आरम्भ में दनु नाम की एक महाभागा महिला थी। उनके शरीर से एक बड़ा अंडा निकला, उसके फूटने पर एक

पुरुष और एक स्त्री निकली। पुरुष का नाम मय, स्त्री का माया था। उन्होंकी सन्तान यह लोग हैं। अपने को यह लोग रक्तास कहते हैं।

रक्तास जाति ने बड़ी उन्नति की। उसमें बड़े-बड़े विद्वान हुए, जिनकी विशेष प्रवृत्ति गणित और विज्ञान की ओर थी। आरम्भ से ही यहाँ यन्त्रो के निर्माण की ओर ध्यान दिया जाने लगा। प्रयत्न यह था कि यथासंभव अधिक-से-अधिक यन्त्र बनें ताकि हमको कम-से-कम काम करना पड़े। बुद्धि का विकास इसी दिशा में हुआ। बड़ी सफलता मिली। खेती यन्त्र करते थे, भोजन यन्त्र बनाते थे, दफ्तरों में लिखना-पढ़ना हिसाब जोड़ना यन्त्र कर लेते थे। बिगड़ने पर मरम्मत करना और ईंधन पहुँचाना, बस रक्तास का इतना ही काम था। धीरे धीरे अपने ईंधन का प्रबन्ध यन्त्र स्वयं करने लगे और छोटी छोटी मरम्मत भी करने लगे। सबकी देख भाल के लिए एक महायन्त्र बनाया गया। उससे सभी प्रधान शक्तिशालाओं तक तार जाते थे। वह उन सबका नियन्त्रण करता था। जिस प्रकार मस्तिष्क मे पतले नाडितन्तु होते हैं, उसी प्रकार यन्त्रो में, और विशेषतः महायन्त्र में, सहस्रो बारीक तार थे। ज्ञानेन्द्रियो और कर्मेन्द्रियों का काम इन तारो से ही होता था।

और तब एक विलक्षण घटना हुई। महायन्त्र और दूसरे यन्त्रों में चेतना ने प्रवेश किया। हम यह नहीं कह सकते कि चेतना की सृष्टि हुई। ऐसा लगता है कि उपयुक्त शरीर देखकर चेतना ने, जीवों ने, उन्हें अपना घर बनाया। यह बात बहुत दिनों में समझ में आयी। धीरे धीरे देख पड़ा कि अब यन्त्र सकल्पपूर्वक काम करते हैं, रुककर सोचते हैं, कभी-कभी अपने चालकों की अवहेलना कर जाते हैं। महायन्त्र उनको आदेश देता रहता है। बुद्धि के प्रादुर्भाव के बाद यन्त्र अपनी बनावट को जान गये, उन वैज्ञानिक

सिद्धान्तों को जान गये जिनके अनुसार उनका सचालन होना था। अब उनको चालक की आवश्यकता न रही। स्वतन्त्र हो गये।

बहुत लोगों को यह परिस्थिति बहुत पसन्द आयी। काम सारा का सारा यन्त्रो के जिम्मे रहा। रक्षासों को केवल भोग रह गया। बिना परिश्रम का जीवन था। यह ठीक है कि यन्त्र अब सेवक से स्वामी हो गये थे। उनकी एक-एक आज्ञा माननी पड़ती थी परन्तु आलसी जीवन को इसमें आपत्ति न थी। विज्ञान और दूसरे गम्भीर विषयो का अध्ययन बन्द हो गया। अब तो यन्त्र की ओर से लाखों की सख्या में किस्से, कहानी और कविता की पुस्तकें तैयार होनी थी। बस वही पढी जाती थी। दिन-रात नाच-गाने के सिवाय कोई काम न था। लडना-भिडना कब का बन्द हो चुका था। भले ही श्मशान की शान्ति हो परन्तु थी शान्ति। पुराकाल में हमारे पूर्वज सूर्य्य अर्थात् पुलस्त्य के उपासक थे परन्तु अब तो मन्दिरो में महायन्त्र की प्रतिमा स्थापित कर दी गयी थी।

परन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिनको यह अवस्था अच्छी नही लगती थी। उनको इसमें रक्षास जाति का सवर्तोमुख ह्रास देख पडता था, शरीर से परिश्रम बन्द, गम्भीर विषयों का अध्ययन बन्द, केवल नाच-रग रह गया। इसका अवश्यम्भावी परिणाम जाति का पतन होगा। जिन यन्त्रों को अपनी सहायता के लिए बनाया गया था वह आज स्वामी हो गए। अब जीवन का नियन्त्रण उनके हाथ में चला गया। यह अच्छा नहीं है। बीच बीच में ऐसा सोचनेवाले कई व्यक्ति पैदा हुए पर उनकी सुनता कौन? महायन्त्र ने उनको बेपानी के घाट मारा।

आज से लगभग २,५०० वर्ष की बात है। (यह ग्रह पुलस्त्य की परिक्रमा लगभग ९ पार्थिव मासों में करता था। अत इसका २,५०० वर्ष हमारे १,८०५ वर्ष के बराबर हुआ) दो मित्र थे, पोल्स और सक्न्द।

इन लोगो के चित्त में यह बात दृढ़ता के साथ जमी कि यन्त्रों के आधिपत्य का अन्त करना ही होगा। सौभाग्य से इनकी पत्नियाँ, बेला और अम्बी, इनसे भी अधिक उत्साहवाली थी। पोल्स ने पुस्तकालयो से लेकर विज्ञान की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ डाली थी। कोई बतानेवाला न था। इसमें कठिनाई पड़ी, फिर भी ज्ञान का बहुत सग्रह हुआ। यह लोग जगलो में चले जाते थे। वही उन पुरानी पोथियों के आधार पर कई प्रकार के शस्त्र बनाए गए।

अकर्मण्यता से जी घबरा उठता है। पला हुआ पशु भी अपने मन का काम करना चाहता है। जिसको सदा दूसरे की आज्ञा का ही पालन करना पड़ता है, वह जीने से भी ऊब जाता है। यह दशा बहुतों की हो रही थी। सबमें साहस समान रूप से नही था, फिर भी धीरे धीरे इनसे कुछ लोग आ मिले और इनके साथियों की सख्या कई सहस्र तक पहुँची। हथियार बनाये गये, पहाड़ की गुफाओं में खाद्य सामग्री भी छिपाकर रखी गयी। सकन्द इस सेना के नायक हुए।

पर ऐसी कार्य्यवाही बहुत दिनों तक गुप्त नही रह सकती। भेद फूटा। महायन्त्र को भी विदित हुआ। उसने सावधान किया कि जो कोई विद्रोह में सम्मिलित होगा उसका सर्वनाश कर दिया जायगा। इस धमकी की वास्तविकता को लोग खूब जानते थे। अन्न-वस्त्र, प्रकाश, यातायात, सब तो यन्त्र के हाथ में था। उसके रुष्ट होने पर जीवन कैसे चल सकता है। बहुतो को विद्रोहियों की सूरत से चिढ थी। उनको ऐसा लगता था कि यह दुष्ट अपना जीवन तो नष्ट करेंगे ही, हमारी भी मिट्टी खराब करायेंगे।

सकन्द और महायन्त्र का महासमर छिड गया। सारे ही लक्षण विद्रोहियों की हार के थे। अधिकांश जनता उनके विरुद्ध थी। जिनके हृदय में सहानुभूति थी, वह भी उसे छिपाये रहते थे, छोटे बड़े यन्त्र के रूप

में हर घर में महायन्त्र का सिपाही और भेदिया विद्यमान था। यन्त्र के पास बुद्धि, ज्ञान और साधन का भंडार था, इन लोगों में ज्ञान और साधन की बड़ी कमी थी। एक और बात थी। इनके पास हृदय था, इसलिए दया आ जाती थी। ऐसे लोगों को भी, जो इनके विरुद्ध काम करते थे, कभी-कभी छोड़ देते थे। यन्त्र की बुद्धि में दया, क्षमा, धर्म के लिए कोई जगह नहीं थी। जो काम निश्चय कर लिया उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं आने पा सकती थी, इसलिए उसकी ओरसे निर्मम प्रहारहो सकता था।

इन लोगों ने अपने शस्त्रों से कई यन्त्र तोड़े, कई शक्तिशालाओं को बेकार कर दिया। परन्तु यह एक तोड़ते थे, वहाँ दो बनते थे। यन्त्र ने भी कई शस्त्र बनाये। ऐसे वायुयान निकाले जिन पर कोई चालक न होता था वह इनके गुप्त अड्डों पर बम गिराते थे। सड़क पर चलते तार और बिजली के खम्भे इन पर टूटकर गिर पड़ते थे। यन्त्रशालाओं में लोहे के बड़े-बड़े टुकड़े छिटककर सर फोड़ देते थे। अन्न-वस्त्र मिलना कठिन था।

ऐसा युद्ध जिसमें दोनों पक्षों में इतनी विषमता हो कब तक चलता। साहस भी साहस खो बैठता। सकन्द की सेना जर्जर हो गयी थी। परन्तु भाग्य इनके साथ था। पोल्स की बुद्धि ने एक नया आविष्कार किया। पहाड़ की ऊँची चोटी पर यह यन्त्र बैठाया गया। इसमें चश्म जैसा महाताल था। सूर्य्य की रश्मियाँ कुछ तो उष्णता देती हैं, कुछ रूप का दर्शन कराती हैं, कुछ रासायनिक क्रियाएँ कराती हैं और कुछ विद्युच्छक्ति का वहन करती हैं। यह ताल इन अंतिम प्रकार की रश्मियों को ही नाभिभूत करता था। जिस यन्त्र की ओर उसे फेरा गया, उसके धातुओं के परमाणुओं का विघटन हो गया। महायन्त्र इस नए शस्त्र की घातकता को समझता था। उसने अपने बचाव के कई उपाय किए। अपने चारों ओर कई दीवारें बनायीं। पर उसका सारा प्रयास विफल हो गया। दूसरे यन्त्रों के

नष्ट हो जाने से वह शरीर विद्युत मन्तिष्क मात्र रह गया। दीवारों के बाहर क्या हो रहा है इसका उसे पता न चलता था और न वह कोई प्रतिकार कर पाता था। विद्रोहियों ने आवरक दीवारों के नीचे विस्फोटक पदार्थ रख कर उन्हें नष्ट कर दिया। उनमें से बहुत-से मारे गये। यन्त्र ने प्रचण्ड अग्नि की वर्षा की परन्तु दीवारों का गिरना था कि युद्ध समाप्त हो गया। यन्त्र पर किरणें गिरी, उसके कलेवर मे क्षोभ हुआ, धातुओं के परमाणु विघटित हुए और क्षण भर में वह मुट्ठी भर राख भी न रह गया। हाँ, नष्ट होने के पहिले यन्त्र अपने अन्तिम विस्फोट से सैकड़ों को मार गया।

समर समाप्त हुआ।

उस समय विद्रोहियों में लगभग दो सहस्र व्यक्ति बच रहे थे। शेष जाता में से कुछ लोग जगलो में जा छिपे थे। उन्हीं के वशज वह जगली है जिन्होने आक्रमण किया था। उनमें से कुछ लोग कभी-कभी सभ्य समाज में आ मिलते है, शेष अभी व्रात्य है।

यत्र की जगह पुन सूर्य्य की उपासना स्थापित हुई। पोल्स के वशज आज भी हमारे पुरोहित है। सकन्द के वशज हमारी राज्यसभा के पैतृक अध्यक्ष है। इस समय हमारी जनसख्या लगभग पाँच सहस्र है। विवाह के बाद दम्पती को बतला दिया जाता है कि उनको कितनी सन्तान पैदा करने का अधिकार है। इस सख्या को समय-समय पर राज्यसभा निर्धारित करती है। यदि इससे अधिक बच्चे हुए तो वह मार डाले जाते है। यह बात सुनने में क्रूर है पर इसके लिए पुष्ट कारण है। जिन विद्याओं को सीख-कर हमारे पूर्वजो ने भुला दिया उनका पुन उद्धार करना सरल नही था पर हम लोग इसमें बहुत कुछ समर्थ हुए है। हाँ, एक दृढ निश्चय हमने कर लिया है। बारह वर्ष के वय में प्रत्येक बालक-बालिका की विशेष

दीक्षा होती है। उसको जाति या इतिहास बताया जाता है और एक त्रिवृत मंगलसूत्र गले में पहिनाया जाता है। इस सूत्र को हाथ में लेकर उसको यह संकल्प करना पड़ता है कि मैं मनसा, वाचा, कर्मणा कभी भी ऐसे यन्त्र के बनाने में योग न दूंगा जो मनुष्य को हटाकर काम करे। यह सूत्र यावज्जीवन शरीर पर रहता है।

यह इतिहास बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद था। पृथिवीवालों को इससे बहुत कुछ सीख मिल सकती है क्योंकि यहाँ भी ऐसे ही यन्त्रों के निर्माण की ओर बुद्धि दौड़ायी जाती है जो बिना मनुष्य की देख रेख के काम किया करें। अस्तु, फिर स्वभावतः यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि जब दोनों सभ्यताओं में इतना सादृश्य है तो फिर और घनिष्ठ सम्बन्ध क्यों न स्थापित किया जाय? व्यापार शुरू किया जाय, यतायात का पक्का प्रबन्ध किया जाय। यह सुझाव रवासों को पसन्द नहीं आया। उन्होंने पूछा कि हम आपको क्या देंगे और आप हमको क्या देंगे? व्यापार का आधार क्या होगा? और फिर उन्होंने यह प्रश्न किया, "आप हम सबको पृथिवी पर बसने देंगे?" इस प्रश्न ने हमारे यात्रियों को असमंजस में डाल दिया। रवास संख्या में थोड़े हैं परन्तु पृथिवी पर इनको कैसे रक्खा जा सकता है? इनको वहाँ स्वतंत्र विकास का अवसर कैसे दिया जा सकता है? क्या यह पार्थिवों में घुल-मिलकर अपने व्यक्तित्व को खो देना पसन्द करेंगे?

इस असमंजस को वह लोग भी समझ रहे थे। उन्होंने कहा भी आप लोग चिन्तित न हों, हम पृथिवी पर नहीं बसना चाहते पर जो प्रश्न हमने आपसे किया है उसके पीछे हमारी बहुत बड़ी समस्या है। आप हमारे उपग्रह को देखते हैं। आपके चन्द्रमा के सदृश है। इसके आकर्षण से हमारे समुद्रों में ज्वार भाटा उठता है जो देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। पर

उससे बडा क्षति भी होती है। चढन-उतरन में पानी नीचे के ठोस तल से रगडता है और ग्रह की आत्मभ्रमण गति को कम करता है। हमारा वर्ष आपकी गणना स नौ मास का है और दिन रात दो मास का। हमारी गाथाएँ बताती हैं कि कभी यह इसका चौथाई ही था। एक दिन दिन रात भी नौ मास का हो जायगा। ग्रह का एक भाग झुलसता रहेगा, दूसरे म बर्फ से भी अधिक ठडक होगी। हमारी आन्तरिक गर्मी भी कम हो गयी है इसलिए हमारी हवा पतली होती जाती है। हवा पानी बनती जा रही है और पानी बर्फ। धीरे धीरे बर्फ की जगह सूखी चट्टानें होंगी। अभी इसको बहुत दिन ह पर हम उस दिन की प्रतीक्षा नही करना चाहते। इस ग्रह को ही छोड दग। हमारे आकाशयान इधर-उधर टोह लगा रहे ह, जहाँ कोई अच्छा-सा स्थान देख पडा हम चले जायँगे । लम्बी यात्रा करनी है और उस यात्रा के बाद नयी सस्कृति और सभ्यता की नीव डालना है। हमारे कधो पर बहुत बडा दायित्व है। इस काम को बहुत बडी सख्या म नही किया जा सकता। इसी लिए हमन अपनी जनसख्या पर रोक लगायी ह।

इस साहस अदम्य उत्साह और दूरदर्शिता की भूरि भूरि प्रशसा करने के सिवाय और क्या कहा जा सकता था। उनकी सफलता की मगलकामना प्रकट करके इन लोगो न विदा ली। पता नही फिर कभी दोनो जातियाँ म भेंट होगी या नही। यह भी पता नही कि ऐसी विपत्ति का सामना मनुष्य भी इसी प्रकार कर सकेंगे या नही।

यात्रा समाप्त

स० २०९२, सन् २०३५। कार्तिक की अमावस्या। सात वर्ष बाद आज मरुत्वान् लौट रहा है।

उसके आने की सूचना पहिले ही मिल चुकी थी। उस समय तक कई आकाशयान बन चुके थे। इनके एक अन्ताराष्ट्रीय दस्ते ने सौरमंडल के बाहर जाकर मरुत्वान् का स्वागत किया और उसको बीच में करके अर्द्धचन्द्राकार वृत्त बनाए उतर रहा था। सारी पृथिवी पर हर्ष मनाया जा रहा था, भारत का तो कहना ही क्या। वाराणसी खुशी के मारे आपे से बाहर हो रही थी। सारनाथ के उस मैदान में जनसमुद्र उमड़ पड़ा था। मरुत्वान् के उतरने पर राष्ट्र की ओर से तोप की सलामी दी गई, लोगो ने पटाखे छोड़े। जयध्वनि से गगन गूँज उठा। सभी राष्ट्रों और विद्वत्परिषदों के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

कुछ देर के बाद घरवालों और अन्तरंग मित्रो की बारी आयी। चारों ही क्वाँरे थे, माताओं ने माथे में तिलक लगाया, ब्राह्मणो ने देव-निर्माल्य मालाएँ प्रदान की। इस देश की परिपाटी है कि जब किसी से बहुत दिनो पर भेंट होती है तो उससे कहा जाता है आप कुछ दुबले हो गए हैं, स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था क्या? पर इनसे ऐसा कहने का किसी को साहस न हुआ। बन्द-बन्द से स्वास्थ्य टपक रहा था, पहिले से युवा होकर लौटे थे।

उस दिन दीपावली थी। यों तो यह हिन्दुओं का त्यौहार है पर इस वर्ष की दीपावली सारी पृथिवी पर मनायी गयी।

इनके साथ खोज की विशाल सामग्री आयी थी। पशु-पक्षियों के कंकाल, कई प्रकार की खालें, रसों में सुरक्षित फल-फूल, भौतिक दृग्विषयों और जीव-जन्तुओं के फोटो, मानचित्र, शस्त्र, बर्तन, कारीगरी के नमूने, पुस्तकें। इनमें से एक-एक का अध्ययन करने के लिए कई वर्ष चाहिएं। इन लोगों के तो अगले कई मास प्रवचन में ही लगनेवाले थे। इनके साथ जो वस्तुएँ आयी थीं, उनमें स्यात् सबसे अद्भुत कुत्ते के बच्चों का जोड़ा था। यह दूर की दुनिया की जीवित निशानी थी।